वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

वर्ष ५८ अंक १२ दिसम्बर २०२०

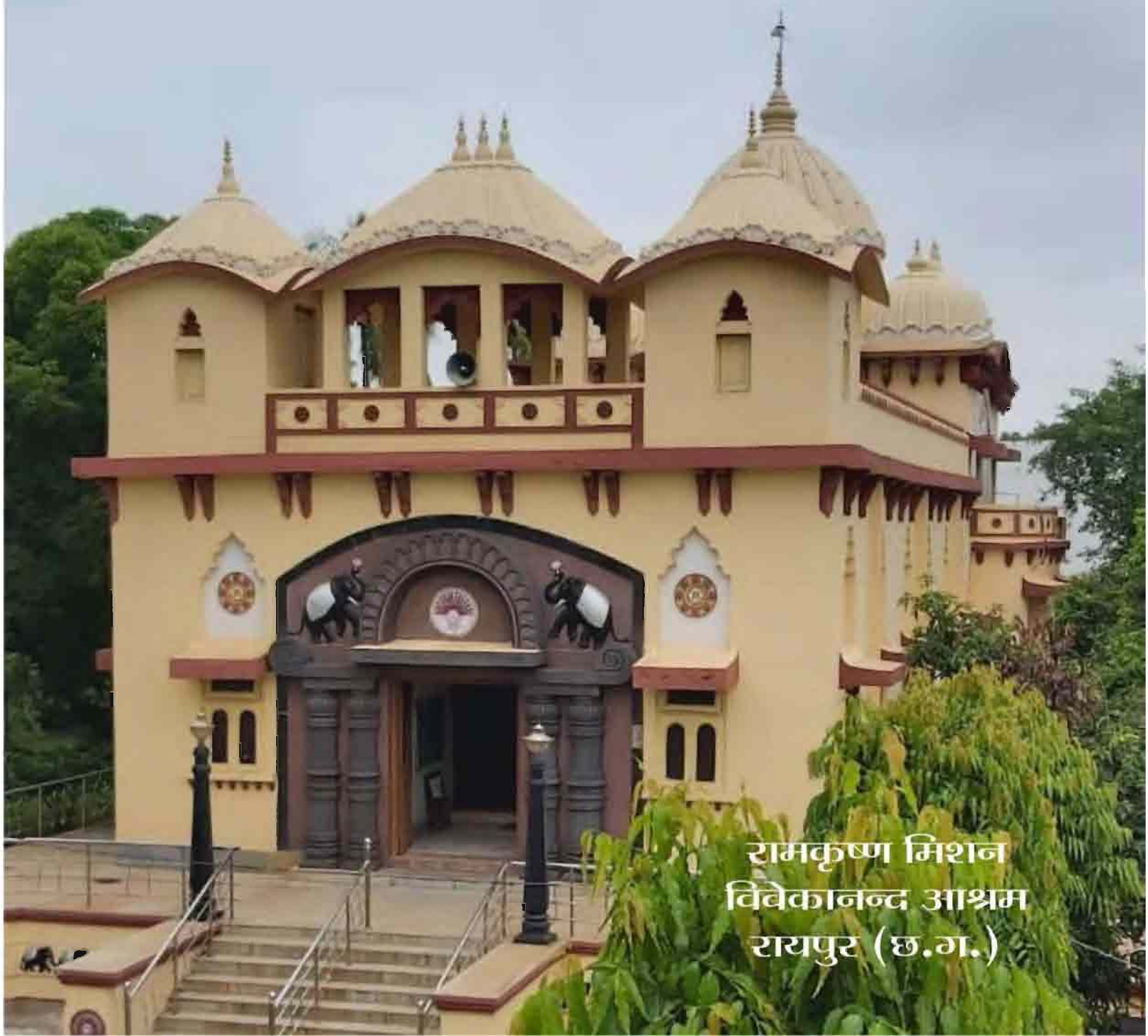

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

दिसम्बर २०२०

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५८
अंक १२

वार्षिक १६०/– **एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. श्रीमद्भगवद्गीता-स्तुतिः ५३३
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) ५३३
३. सम्पादकीय : वैश्विक महामारी कोरोना-१९ की चुनौतियाँ और सन्देश ५३४
४. रामराज्य का स्वरूप (१/२) (पं. रामकिंकर उपाध्याय) ५३८
५. (भजन) सियराम को भज लीजिए (सन्त मैथिलीशरण 'भाईजी') ५४०
६. स्वामी विवेकानन्द की समदृष्टि (प्रव्राजिका त्यागात्मप्राणा) ५४१
७. (भजन) मन रे! रामकृष्ण-गुण गाओ (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ५४५
८. (बच्चों का आँगन) प्राण दे देंगे, लेकिन झुकेंगे नहीं (ब्रह्मचारी विमोहचैतन्य) ५४६
९. मन पर कठोर शासन कर उसे भगवान में लगाओ (स्वामी सत्यरूपानन्द) ५४७
१०. यशोदानन्दन श्रीकृष्ण : आत्मसंयम योग की पूज्य मूर्ति (सन्त मैथिलीशरण 'भाईजी') ५४८
११. (प्रेरक लघुकथा) करनी को 'किया' कहे कथन गलत नहिं होय (डॉ. शरद चन्द्र पेंढारकर) ५४९
१२. सारगाछी की स्मृतियाँ (९८) (स्वामी सुहितानन्द) ५५०
१३. (युवा प्रांगण) सकारात्मक दृष्टिकोण से अपने जीवन को निखारिये (स्वामी ओजोमयानन्द) ५५२
१४. साधुओं के पावन प्रसंग (२४) (स्वामी चेतनानन्द) ५५७
१५. भगवान के विभिन्न नाम क्यों? (अरुण चूड़ीवाल) ५६०
१६. गीतातत्त्व-चिन्तन – १२ (नवम अध्याय) (स्वामी आत्मानन्द) ५६२
१७. प्रश्नोपनिषद् (७) (श्रीशंकराचार्य) ५६५

ISSN 2582-0656

१८. (संस्कृत काव्य) ब्रह्मसूक्तम्
(डॉ. सत्येन्दु शर्मा) ५६६
१९. मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (३६)
(स्वामी अखण्डानन्द) ५६७
२०. विश्व के दो महान दार्शनिकों का परस्पर
अनूठा उपहार (प्रो.बालकृष्ण कुमावत) ५६९
२१. आध्यात्मिक जिज्ञासा (६०)
(स्वामी भूतेशानन्द) ५७०
२२. समाचार और सूचनाएँ ५७३
२३. वार्षिक अनुक्रमणिका २०२० ५७४

आवश्यक सूचना

विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में १५ दिसम्बर, २०२० से २३ दिसम्बर, २०२० तक विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया जायेगा। २१ जनवरी, २०२१ को विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन होगा। २२ जनवरी, २०२१ से २८ जनवरी, २०२१ तक आश्रम प्रांगण में श्री रामकिंकर महाराज के शिष्य सन्त श्री मैथिलीशरण 'भाईजी' का रामचरितमानस पर प्रवचन होगा। प्रवचन के पहले और बाद में कलाकारों द्वारा भजन-संगीत होगा। २९ जनवरी, २०२१ से ०२ फरवरी, २०२१ तक वृन्दावन-धाम के पण्डित अखिलेश शास्त्रीजी का श्रीमद्भागवत पर प्रवचन होगा।

दिसम्बर माह के जयन्ती और त्योहार

२३ स्वामी प्रेमानन्द
२४ क्रिसमस ईव

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
डॉ. निवेदिता बक्शी, बेलूड़ मठ, हावड़ा (प.ब.)	१,०००/-
श्री आशीष कुमार बॅनर्जी, शंकर नगर,रायपुर (छ.ग.)	१,०००/-
श्री सुनील कुमार गुप्ता, विकासपुरी, दिल्ली	१,१००/-

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) **विवेक ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमितता के कारण कई बार पत्रिका नहीं मिलती है। अतः पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक-विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे अनेक सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है।** पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। **अंक उपलब्ध रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।**

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर दर्शाया गया मन्दिर श्रीरामकृष्ण सेवा मण्डल, भिलाई, छत्तीसगढ़ का है। जिसकी प्राण-प्रतिष्ठा २३ फरवरी, १९९५ को रामकृष्ण मठ-मिशन के तत्कालीन उपाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी गहनानन्द जी महाराज ने किया था। इस अवसर पर स्वामी गौतमानन्द जी महाराज, स्वामी सत्यरूपानन्द जी, स्वामी निखिलात्मानन्द जी और स्वामी श्रीकरानन्द जी तथा अन्यान्य संन्यासीगण तथा भक्तवृन्द उपस्थित थे।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६२८.	.....	श्री गोवर्धन सरस्वती विद्यामंदिर इंटर कॉलेज, देहरादून (उ.ख.)
६२९.	,, ,,	इंड्स क्वालिटी फाऊंडेशन, तपोवन रायपुर, देहरादुन (उ.ख.)
६३०.	,, ,,	द लाईब्रेरी,डी.ए.वी. (पीजी) कॉलेज, करनपुर, देहरादून (उ.ख.)
६३१.	,, ,,	डी.ए.वी. इंटर कॉलेज, डी. एल. रोड, देहरादून (उ.ख.)
६३२.	,, ,,	एम.के.पी. (पीजी) कॉलेज, देहरादून, न्यू रोड, देहरादून (उ.ख.)
६३३.	श्रीमती कल्पना चॉवला, राजौरी गार्डन, न्यू दिल्ली	द लाईब्रेरी, इंदिरा गाँधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५८ दिसम्बर २०२० अंक १२

श्रीमद्भगवद्गीता-स्तुतिः

गीताशास्त्रमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतः पुमान्।
विष्णोः पदमाप्नोति भयशोकादिवर्जितः।।

– जो गीताशास्त्र का प्रयत्नपूर्वक पाठ करता है, वह भय-शोक से मुक्त हो विष्णु-पद को प्राप्त करता है।

प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः।।

– जो शरणागत के लिये पारिजात-वृक्ष के समान है, रथ के घोड़ों के हाँकने के लिये जिनके हाथ में वेत्र-दण्ड है, जो ज्ञानमुद्रा से युक्त है, गीता रूपी अमृत का दोहन करनेवाले श्रीकृष्ण को नमस्कार है।

गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च।
नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च।।

– गीता का अध्ययन करनेवाले प्राणायामपरायण व्यक्ति के पूर्वजन्म के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।

– गीता सुगीता करने योग्य है। गीता को ठीक से पढ़कर अर्थ और भावसहित हृदय में धारण करना चाहिए, जो स्वयं भगवान के मुखारविन्द से निकली हुई है।

पुरखों की थाती

किं तया क्रियते धेन्वा या न दोग्ध्री न गर्भिणी।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न भक्तिमान्।।७०६।।

– उस गाय का भला क्या उपयोग, जो न दूध देती है और न गाभिन ही होती है। वैसे ही घर में ऐसे पुत्र के जन्म लेने से क्या लाभ, जो न विद्वान् हो और न भगवान का भक्त ही हो।

संसारातपदग्धानां त्रयो विश्रान्ति-हेतवः।
अपत्यं च कलत्रं च सतां संगतिरेव च।।७०७।।

– संसार के धूप से तपते हुए लोगों को ये तीन चीजें ही विश्राम दे सकती हैं – सन्तान, पत्नी और साधु-सज्जनों की संगति।

एकाकिना तपो द्वाभ्यां पठनं गायनं त्रिभिः।
चतुर्भिर्गमनक्षेत्रं पञ्चभिर्बहुभिरणम्।।७०८।।

– तप अकेले में करना उचित होता है, पढ़ने में दो, गाने मे तीन, जाते समय चार, खेत में पाँच व्यक्ति तथा युद्ध करते समय अनेक व्यक्ति होने चाहिये।

वाचा च मनसः शौचं शौचमिन्द्रिय-निग्रहः।
सर्वभूत-दया शौचम् एतच्छौचं परमार्थिनाम्।।७०९।।

– परमार्थ को चाहने वाले लोग, मन तथा वाणी के संयम को शौच मानते है, इन्द्रियों के निग्रह को शौच मानते हैं और सभी प्राणियों पर दया-भाव रखने को भी शौच मानते हैं।

वैश्विक महामारी कोरोना-१९ की चुनौतियाँ और सन्देश

इस वर्ष के प्रारम्भ में ही कोरोना जैसी भयंकर महामारी ने लगभग सम्पूर्ण विश्व को एक साथ अपनी चपेट में ले लिया, जिससे सम्पूर्ण विश्व एक साथ त्रस्त हो गया। महामारियाँ पहले भी हुई हैं, जैसे – प्लेग, चेचक, टी.वी आदि और समाज ने उन पर विजय पायी है। १८९९ में प्लेग ने बंगाल को त्रस्त कर दिया था, तब स्वामी विवेकानन्द ने सेवारम्भ की थी और निर्देश जारी किये थे। लेकिन ये सब बीमारियाँ एक देश या कुछ देशों तक सीमित क्षेत्र में रहीं, देश में भी किसी राज्य-विशेष में रहीं। लेकिन कोरोना जैसी महामारी तो शायद पहली बार दृष्टिगोचर हो रही है, जो पूरे विश्व में एक साथ फैलकर मानव-समुदाय को सर्वाधिक पीड़ा दे रही है और उन्हें मृत्यु का ग्रास बना रही है। इसके वायरस छूने, पास जाने, बोलने, छींकने आदि से दूसरे में प्रवेश कर अपने आगोश में ले लेते हैं और चिकित्सोपरान्त भी कुछ लोगों को मृत्यु की गोद में सुला देते हैं। आज (अक्तूबर में) पूरे विश्व में ३,६६,३६,९९९ संक्रमित और १०,६४,२८३ मृत्यु हो चुकी है, जिसमें सर्वाधिक अमेरिका में है। भारत में ६९,०२,७७५ संक्रमित और १,०६,५३४ लोगों की मृत्यु हो चुकी है।

यह ऐसी बीमारी है, जिसकी औषधि किसी भी देश के पास नहीं है। औषधि बनाने की योजना तक यह महामारी पूरे विश्व में फैलकर और अपना एकछत्र राज्य स्थापित कर निर्दोष मानवों का वध कर रही है।

लॉकडॉउन : एक महत्त्वपूर्ण कदम

भारत में भी इस महामारी ने अपने पैर फैलाए, लेकिन अन्य समृद्ध और विकसित देशों की दुर्दशा से शिक्षा लेकर भारत सरकार ने तत्काल प्रथम उपचार जनता कर्फ्यू, लाकडाउन, स्वच्छता, घर-घर दीप-प्रज्वलन, घंटा-नाद आदि के द्वारा इसे नियन्त्रित करने का प्रयास किया। उसके बाद दीर्घकालीन लॉकडॉउन का कठोर निर्णय लिया गया और देशवासियों हेतु दिशा-निर्देश जारी किए गये। स्वयं प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने कई बार सम्बोधित कर देशवाशियों को घर में रहने, दिन में कई बार २० सेकण्ड तक साबुन से हाथ धोने, मुँह पर मास्क पहनने, एक-दूसरे से दूर रहने आदि निर्देश जारी किए। अन्य देशों की अपेक्षा हम संक्रमण के द्रुत विस्तार से बच गए। लेकिन नियमों और निर्देशों को कुछ लोगों के द्वारा न मानने के कारण बीमारी बढ़ती ही गई।

लॉकडॉउन में समस्याएँ और जन-सेवा

भारत सरकार और समाज सेवी संस्थाओं ने लॉकडॉउन के समय लोगों को भोजन, यातायात आदि की व्यवस्था कर अभावग्रस्त एवं संकट में फँसे लोगों की सेवा कर बन्धुता, आत्मीयता और राष्ट्रीय एकता का परिचय दिया, जो अत्यन्त प्रशंसनीय है। प्रशासन विभाग, पुलिस विभाग, चिकित्सा विभाग, सफाई कर्मचारियों और समाजसेवकों आदि की सेवाएँ अद्वितीय हैं। कितने लोगों ने इस सेवा-यज्ञ में सेवा करते-करते अपने प्राणों का होम कर दिया, इस कोरोना-रण में लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हो गए।

देश की अन्य आध्यात्मिक और समाजसेवी संस्थाओं ने भी यथासम्भव जन-सेवा की। केन्द्र सरकार ने लॉकडाउन में फँसे लोगों को एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने के लिये विशेष गाड़ियाँ चलाई, विदेशों में फँसे प्रवासियों के लिये हवाई जहाज की भी व्यवस्था की। कई चरणों में लाकडॉउन हुआ। सब होने के बाद भी कोरोना के मरीजों की संख्या बढ़ती जा रही है। भारत सरकार द्वारा नये कोरोना सेन्टर आरम्भ किए जा रहे हैं, कोरोना चिकित्सा हेतु सरकारी और प्राइवेट अस्पतालों को कोरोना केन्द्र में विकसित किया गया है। कम अनुपात में लोग ठीक भी हो रहे हैं। लेकिन रोगियों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है।

कोरोना के रोकथाम हेतु प्रामाणिक औषधि, जिन्हें वैक्सीन कहते हैं, उनका परीक्षण जारी है। लेकिन इसके पूर्व भारतीय आयुर्वेद पद्धति की औषधि काढ़ा पीना, गरारा करना आदि प्रतिरोधात्मक क्षमता बढ़ाने में सहायक हो रही है। यह बीमारी कब तक रहेगी, यह अब तक निश्चित नहीं है।

कोरोना-त्रासदी से संकट में सम्पूर्ण विश्व

कोरोना से लोगों के शारीरिक, मानसिक कष्ट भोगने और मरने के अतिरिक्त सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था नष्ट हो रही है, जो मानव की सुख-सुविधा एवं भौतिक विकास का

प्रमुख साधन होती है। सरकार, प्रशासन और नागरिकों की सारी ऊर्जा इस महामारी से बचने के प्रयास में ही लगी जा रही है। मानवता चिन्ता, दुख, पीड़ा और भय से ग्रस्त है।

इस महामारी ने हर स्तर के व्यक्ति को प्रभावित किया। इससे नेता, मंत्री, प्रशासक, उच्च, मध्यम, निम्न हर स्तर के लोग किसी-न-किसी रूप में प्रभावित हैं। इस महामारी ने विश्व में सबको एक साथ संकटग्रस्त किया। समाज यदि इसी बीमारी के समत्व को ग्रहण कर इसका अनुप्रयोग मानव-विकास में करता, सबसे भेदरहित व्यवहार करता, मानव से प्रेम करता, तो यह संसार दिव्य हो जाता।

चुनौतियाँ और आत्मनिर्भरता की ओर भारत

किसी घटना में अनुपाततः अल्पाधिक हानि और लाभ दोनों होते हैं। कोरोना ने सारे विश्व को शारीरिक, मानसिक और आर्थिक रूप से अत्यन्त परेशान किया। शिक्षालय, मंत्रालय, व्यापार, आजीविका सब कुछ बुरी तरह प्रभावित हुआ, जिससे विश्व में आर्थिक स्तर पर दुष्प्रभाव पड़ा। इस स्थिति में भी भारत सरकार कमर कसकर अपने देशवासियों की सेवा में खड़ी रही। भारतवर्ष बहुत-सी वस्तुओं का स्वयं निर्माण कर आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हुआ।

पर्यावरण की शुद्धि

कोरोना के कारण जब लॉकडॉउन हुआ, तो पर्यावरण बहुत शुद्ध हो गया। लोगों ने देखा कि नगरों में वर्षों से जो आकाश-स्वच्छ नहीं दीखता था, धुँधला दिखता था, रात में तारे नहीं दिखते थे, वे सभी स्वच्छ और स्पष्ट दिखने लगे। नदियों का जल स्वच्छ हो गया। प्रदूषण बहुत कम हो गया, जिसकी वर्षों से आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा था। प्रकृति अपने प्रकृत स्वरूप में दृष्टिगोचर होने लगी। इस परिस्थिति से निकलने के बाद भी पर्यावरण की शुद्धि के लिये जन-सुविधाओं का ध्यान रखते हुए, योजनाबद्ध ढंग से इस प्रक्रिया का प्रयोग किया जा सकता है।

पारिवारिक सान्निध्य

अत्यधिक कार्य के दबाव में लोगों को अपने घर-परिवार से मिलने का अवसर नहीं मिलता था। लोग अपने जीविकोपार्जन हेतु प्रातः निकलते, तो शाम-रात को घर आते। घर के लोगों से मिलने, बात करने का समय ही नहीं मिलता था। यदि समय मिल भी गया, तो कार्य के तनाव में प्रेम से बात नहीं कर पाते थे, ठीक से व्यवहार नहीं करते थे। वे लोग प्रारम्भिक लॉकडॉउन से अपने घरों में रहकर अपने परिवार के साथ समय देने लगे, जिससे पारिवारिक स्नेह, सौहार्द का बोध स्वजनों का हुआ। बाद में भले ही लोग घरों में रहकर ऊब गए थे। सरकार ने दूरदर्शन पर रामायण, महाभारत, श्रीकृष्ण, चाणक्य, शक्तिमान आदि कई प्रसिद्ध धारावाहिक का प्रसारण किया, जिससे लोग अपने पूरे परिवार के साथ घर में प्रसन्न रहें। परिवार के साथ परस्पर शान्तिपूर्ण संवाद और एक-दूसरे को देखने समझने का अवसर मिला।

बहिर्मुखता से अन्तर्मुखता की ओर कदम

सामान्यतः मानव की प्रवृत्ति बहिर्मुखी होती है। अत्यल्प लोग ही अन्तर्मुखता के अभाव का बोध करते हैं और उसकी प्राप्ति का प्रयास करते हैं। देखा जाता है कि कुछ लोग तो उठते ही कमरे से बाहर निकलकर बरामदे से, खिड़की से सड़क पर जा रहे व्यक्ति और वाहनों को देखते हैं। वैसे लोगों की दिनचर्या बहिरंगता से आरम्भ होती है और क्लान्तावस्था में रात्रि की निद्रा में अन्त होती है। लोग दिनभर ऑफिस में कार्य करने के बाद रात्रि के ११-१२ बजे तक सड़कों, चौराहों, चाय-दुकान, पार्क, गार्डन में गप मारते-रहते हैं। इसके बाद ये लोग क्या अपने माता-पिता और परिवार से मिलेंगे, आप स्वयं सोच लीजिए!

लेकिन लॉकडॉउन ने सबको घर के परिसर में सीमित कर दिया। जिन्हें पढ़ने-लिखने का समय और अभ्यास नहीं था, वे लोग सत्साहित्य पढ़ने लगे। कुछ लोग तो योगाभ्यास, जप-ध्यान की आदत डालने लगे। ऑनलाईन सत्संग सुनने लगे। इस बीमारी से रक्षा हेतु भगवान से प्रार्थना करने लगे। इस प्रकार लोग बहिर्मुखता से अन्तर्मुखता की ओर अग्रसर हुए। कोरोना ने मानव को एक बार फिर उसे जाने-अनजाने बहिरंग से अन्तरंग यात्रा का आस्वादन कराया। जो लोग अन्तरंगता की ओर नहीं जा सके, केवल बाह्य सुख-साधनों पर आश्रित थे, वे ऊब गए, तनाव में आ गए और बिना कोरोना के प्राण दे दिए।

भारतीय संस्कृति की ओर

इस बीमारी से रोकथाम के जो प्राथमिक उपाय बताए गए, उसका विधान हिन्दू धर्म में पहले से ही है। स्नान, स्वच्छ वस्त्र, भोजन में संयम, बाहर कहीं से आने पर स्नान, वस्त्र, हाथ-मुँह-पैर प्रक्षालन, करबद्ध प्रणाम आदि पहले से शास्त्रों में हैं। सभ्य सुसंस्कृत परिवारों में आज भी लोग उसका पालन करते हैं। जो लोग इन निर्देशों का पालन नहीं

करते थे, वे लोग कोरोना के भय से डॉक्टर और पुलिस के निर्देश पर कर रहे हैं। आधुनिकता से मदमत्त पूरे विश्व का मन भारत की इस महान संस्कृति की ओर आकृष्ट हुआ।

इस संकट-काल में रामकृष्ण मिशन की भौतिक और आध्यात्मिक सेवाएँ

रामकृष्ण मिशन श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों पर चलते हुए इस संकट में अपने देश-विदेश के सभी केन्द्रों के साथ भौतिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टि से मानवता की सेवा में संलग्न रहा। लगभग सभी केन्द्रों ने यथाशक्ति अपने-अपने क्षेत्रों में पका भोजन, भोजन-सामग्री, मास्क, सेनेटाइजर आदि सामग्रियों का कई माह वितरण किया। श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों से अनुप्राणित रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद् की संस्थाओं ने भी इस महायज्ञ में अपनी सेवा की आहुतियाँ दीं। यहाँ तक कि प्रशासन के निवेदन पर प्रवासी लोगों को भोजन के साथ उन्हें घर पहुँचने के लिये लाखों रुपये व्यय कर वाहनों की व्यवस्था प्रदान की।

विश्व को आध्यात्मिक सम्बल

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महाध्यक्ष परम पूज्यपाद स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज ने इस संकट में सबके धैर्य और संघर्ष-शक्तिवर्धन हेतु २१ मार्च, २०२० को अपना आशीर्वचन प्रेषित किया –

ईश्वर की प्रिय सन्तानो!

सम्पूर्ण विश्व में आज लाखों मनुष्य कोरोना महामारी (कोविड-१९) के प्रकोप के कारण अत्यन्त भय एवं उद्वेगपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं। भारतवर्ष में अब तक इस महामारी से लगभग ३०० लोग संक्रमित हैं। किन्तु हमारे देश की अत्यन्त घनी जनसंख्या का ध्यान रखते हुए, हम सबको अत्यधिक सावधानी बरतनी होगी। सरकारी संस्थाएँ इस बीमारी के प्रसार को रोकने के लिये कड़े कदम उठा रही हैं। रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव महाराज ने भी हमारे संन्यासी-ब्रह्मचारियों एवं गृहस्थ भाई-बहनों के पालन हेतु कुछ आवश्यक निर्देश जारी किये हैं।

इस बीमारी के कारण आज समग्र मानवता संकट का सामना कर रही है, जो कदाचित् आगे भी ऐसे ही कुछ दिन रह सकती है। किन्तु हमारा विश्वास है कि श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द के जीवन और उपदेशों में इस विश्वव्यापी संकट से संघर्ष करने योग्य पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। उनकी कृपा से हम सभी निश्चित ही इस शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक संकट से उबर सकेंगे। यदि हमारे हृदय में यह दृढ़ विश्वास हो, तो हमें इससे भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है।

श्रीरामकृष्ण देव और अन्य महापुरुषों ने हमें बताया है कि हम सबके सम्मुख एक उच्चतर आध्यात्मिक लक्ष्य है,

रामकृष्ण मठ एवं मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा राहत कार्य

स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज

जिसे अर्जन करना ही मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है। उस परम लक्ष्य की प्राप्ति के पक्ष में व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से ऐसी विघ्न-बाधाएँ आती ही रहती हैं। किन्तु उन सर्वशक्तिमान ईश्वर की असीम अनुकम्पा से हम सभी उन बाधाओं का अतिक्रमण कर परम लक्ष्य तक अवश्य पहुँचेंगे। अत: लक्ष्य की प्राप्ति तक रुकें नहीं। सबके कल्याणार्थ मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है।

स्वामी स्मरणानन्द
महाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ और मिशन,
बेलूड़ मठ, हावड़ा

भय से मुक्त रहें

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव परम पूज्य स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज ने सन्देश जारी किया –

आज जब समस्त विश्व कोरोना महामारी के संकट से जूझ रहा है, तो कई लोगों के मन में यह प्रश्न आता है कि कैसे हम इस संकट का मुकाबला कर सकते हैं।

श्रीरामकृष्ण देव के उपदेशों में, विशेषकर गृहस्थ भक्तों के उद्देश्य से, एक बात का उल्लेख बारम्बार आता है और वह यह है कि निर्जनवास, नियमित जप, ध्यान और प्रार्थना इत्यादि की बात करते हुए भी ठाकुर बार-बार कहते हैं कि संसार में रहते हुए भक्ति, विवेक और वैराग्य की मात्रा (प्रभाव) बढ़ाने के लिये बीच-बीच में निर्जनवास बहुत ही आवश्यक होता है। परन्तु यह भी सत्य है कि निर्जनवास बहुत ही दुर्लभ है। इसीलिए आज जब कोरोना के चलते देशव्यापी लॉकडॉउन में रहने के लिये हम सभी बाध्य हुए हैं, तो इसे हम सकारात्मक रूप से निर्जनवास मान ले सकते हैं। श्रीरामकृष्ण निश्चित रूप से यही आशा करते हैं कि हम अपने जीवन को अधिक-से-अधिक ईश्वर में लगाने का प्रयास करें।

स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों को देखें, तो एक विशेष बात बहुत ही स्पष्ट दिखती है। विवेकानन्दजी अपने युवा अनुयायियों को जोर देते हुए कहते हैं कि मृत्यु को सदा याद रखो। प्रारम्भिक अवस्था में मृत्यु का विचार मन में भय ला सकता है, परन्तु इसका सतत अभ्यास करने से न केवल मृत्यु का भय मन से निकल जायेगा, वरन् मन सकारात्मक जीवन के प्रति नया जोश से भी काम करने लगेगा।

पृथ्वी के इतिहास में कोरोना जैसी महामारियाँ आती-जाती रहती हैं। वर्ष १८९९ में बंगाल में बड़े स्तर पर प्लेग का संक्रमण हुआ था। उस समय स्वामीजी ने एक प्लेग मैनेफिस्टो भी तैयार किया था, जो आज भी बहुत प्रासंगिक है। स्वमीजी ने कहा था – ''भय से मुक्त रहें, क्योंकि भय सबसे बड़ा पाप है, मन को हमेशा प्रसन्न रखें, मृत्यु तो अपरिहार्य है, फिर उससे भय कैसा? कायरों को मृत्यु का भय सदा द्रवित करता रहता है।'' स्वामीजी ने इस डर को दूर करने का आग्रह करते हुए कहा – ''आओ, हम इस झूठे भय को छोड़ दें और भगवान की असीम करुणा पर विश्वास रखें। अपनी कमर कस लें और सेवा-कार्य के क्षेत्र में प्रवेश करें। हमें शुद्ध और स्वच्छ जीवन जीना चाहिए। रोग, महामारी का डर इत्यादि ईश्वर की कृपा से विलुप्त हो जायेगा।''

आगे स्वामीजी ने कहा – ''घर और उसके परिसर, कमरे, कपड़े, बिस्तर और नाली आदि को हमेशा स्वच्छ बनाये रखें, बासी तथा खराब भोजन न ग्रहण करें। इसके बदले ताजा और पौष्टिक भोजन ही लें। दुर्बल शरीर में बीमारी की आशंका अधिक होती है। महामारी की अवधि के दौरान क्रोध और वासना से दूर रहें, भले ही आप गृहस्थ हों।'' उन्होंने लोगों के मन में आत्मविश्वास जगाते हुए यहाँ तक कहा था – ''अगर आपका सहायक कोई नहीं है, तो बेलूड़ मठ में भगवान श्रीरामकृष्ण के सेवकों को तुरन्त सूचना भेजें, शारीरिक रूप से सम्भव किसी भी सहायता में कोई कमी नहीं होगी।''

रामकृष्ण मिशन इस कोरोना-काल के महासंकट में देश-विदेश सर्वत्र अपनी सेवाओं के साथ संलग्न रहा। हम श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द जी से यह प्रार्थना करते हैं कि अतिशीघ्र इस कष्ट से विश्वमानव को मुक्ति मिले और सारा विश्व पहले जैसा ही सानन्द विहार करने लगे। ○○○

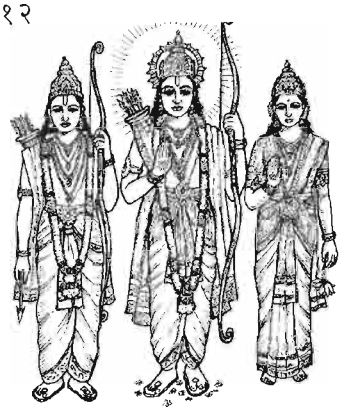

रामराज्य का स्वरूप (१/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

दूसरा दु:ख है कर्मकृत दु:ख। कर्मकृत दुख का तात्पर्य यह है कि कई बार हम और आप कोई कार्य ऐसा करते हैं, जिसका बुरा परिणाम भोगना पड़ता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति यह समझ लेता है कि इस व्यक्ति ने ऐसा किया, उसके परिणामस्वरूप उसके जीवन में इस प्रकार का दुख आया। लेकिन कई बार ऐसे व्यक्तियों के जीवन में दुख आ जाता है, जो बड़े पुण्यात्मा, बड़े साधक और बड़े पवित्र वृत्तिवाले हैं। जब उनके जीवन में दुख आता है, तो लोग स्वाभाविक रूप से आलोचना करते हैं। लोग कहते हैं कि क्या लाभ है अच्छे कर्म के? साधना या ज्ञान-भक्ति का कोई लाभ नहीं है। अगर इस व्यक्ति के जीवन में दु:ख आ गया, तो ऐसी स्थिति में इन साधनों की कोई सार्थकता नहीं है।

अब इसको ऐसे बताने की चेष्टा की गई, जैसे किसी वृक्ष के नीचे हम खड़ें हो और वृक्ष में फल दिखाई दे, तो हम यह समझते हैं कि यह इस वृक्ष का फल है, पर बाजार में आप फल खरीदने के लिये जाएँ और फल लेकर आप लौटें, तो वृक्ष वहाँ पर नहीं है, पर फल को देखकर प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति वृक्ष की कल्पना कर लेता है कि यह आम का फल है, आम के वृक्ष से ही यह फल उत्पन्न हुआ है। ठीक इसी प्रकार से कर्मशास्त्र यह कहता है, कर्मशास्त्र का यह संकेत है कि जब कभी हमें कर्म और उसका परिणाम प्रत्यक्ष दिखाई दे, तो वह वृक्ष और फल के समान है। पर कभी फल प्रत्यक्ष दिखाई दे और कर्म प्रत्यक्ष न दिखाई दे, तो भी हमें तर्क से यह समझ लेना चाहिए कि इस समय भले ही मेरे द्वारा या किसी व्यक्ति के द्वारा कोई असत्कर्म नहीं हुआ, लेकिन कोई न कोई, पूर्व जन्मों में मुझसे ऐसा कर्म हुआ है, जिसका परिणाम आज दु:ख के रूप में मेरे सामने आया है। अनादि काल से व्यक्ति के अनगिनत जन्म हो चुके हैं और जितने जन्म हुए हैं, उसमें निश्चित रूप से असंख्य कर्म हुए हैं, पाप कर्म भी हुए हैं, पुण्यकर्म भी हुए हैं। ऐसी स्थिति में कर्मों की जो अनवरत शृंखला है, वह इतना विस्तृत है कि इनके फलों की व्याख्या कर पाना एक जन्म को देखकर सम्भव नहीं है। इसीलिए रामायण में कहा गया कि कर्म सिद्धान्त की व्याख्या कर पाना और फलों पर विचार कर पाना, यह ब्रह्मा जैसे बुद्धिमान के लिए ही सम्भव है –

कठिन करम गति जान बिधाता।
जो सुभ असुभ सकल फल दाता।। २/२८१/४

इस तरह से दुख का दूसरा हेतु कर्म है। कर्म की अनादि कालीन शृंखला है, परम्परा है, इसीलिए कर्म के परिणाम से व्यक्ति बच नहीं पाता है।

तीसरा दुख है गुणकृत। दुख का तीसरा कारण गुणकृत बताया गया। गुणकृत दुख का अभिप्राय क्या है? यह जो सृष्टि की रचना हुई, वह कैसे हुई? जब किसी धातु के द्वारा किसी बर्तन का निर्माण होता है, तो उस धातु के जो गुण होते हैं, जो दोष होते हैं, वे गुण-दोष उस बर्तन में भी होते हैं। इसी प्रकार से जो सृष्टि बनी है, वह कैसे बनी हुई है? इसका रामचरितमानस में सूत्र दिया गया –

बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना। १/५/४

गुण और अवगुण कैसे हैं, जैसे मिट्टी और पानी है। एक कुम्हार जब घड़े का निर्माण करता है, तो मिट्टी में जल मिला देता है और यदि अन्य कोई वस्तु भी डालना चाहता है, तो डाल देता है। अब जब जल और मिट्टी मिलकर एकाकार हो गये, तो दोनों को अलग कर पाना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार जब सृष्टि का निर्माण हुआ, तो गुण और अवगुण दोनों को मिलाकर हुआ। ऐसी स्थिति में जो गुण का प्रभाव है, वह भी जीवन में आयेगा और जो दोष के तत्त्व हैं, उसका भी परिणाम आयेगा और उसे भी भोगना पड़ेगा।

इसीलिए व्यक्ति के जीवन में न चाहकर भी कभी सत्त्वगुण का उदय होता है, कभी रजोगुण का उदय होता है और कभी तमोगुण का उदय होता है। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति गुणों के कारण भी सुखी और दुखी दिखाई देता है। उसमें भी अगर ये गुण उचित समय में सक्रिय हों, तो उनका उपयोग भी किया जा सकता है, पर जीवन की विडम्बना यह है कि जिस समय जिस गुण को सक्रिय नहीं होना चाहिए, वही गुण बहुधा हमारे जीवन में सक्रिय हो जाया करता है। इसका अभिप्राय यह है कि कथा-श्रवण करते समय, पूजन करते समय, ध्यान करते समय अगर सत्त्वगुण की वृत्ति का उदय हो, कर्म करते समय यदि रजोगुण कि वृत्ति का उदय हो, पलंग पर सोते समय अगर तमोगुणी वृत्ति का उदय हो, तो तीनों गुण उपयोगी हैं। क्योंकि अगर तमोगुण का उदय नहीं होगा, तो नींद नहीं आएगी, तो ऐसी स्थिति में पलंग पर तमोगुण की आवश्यकता है। अगर व्यक्ति के जीवन में रजोगुण नहीं होगा, तो कर्म नहीं होगा। इसलिए रोजगुण की भी आवश्यकता है। व्यक्ति के जीवन में कर्म के लिये रजोगुण रहे। यदि सत्त्वगुण का उदय नहीं होगा, तो व्यक्ति न अन्तर्मुख हो सकेगा, न विचार कर सकेगा, न चिन्तन कर सकेगा और न भगवान का ध्यान कर सकेगा। लेकिन उलटी ही बात है, कभी-कभी श्रोताओं को सोते हुए देखकर थोड़ा आश्चर्य होता है, लेकिन गोस्वामीजी की एक पंक्ति पढ़कर सन्तोष हो गया कि गोस्वामीजी की कथा में भी श्रोता जरूर सोते रहे होंगे। इसलिए गोस्वामीजी ने व्यंग्य किया, क्योंकि लिखा हुआ है कि जिस समय व्यक्ति कथा में जाता है, तो वहाँ जाते ही उसे नींद रूपी जूड़ी (बुखार) आ जाती है –

जातहिं नीद जुड़ाई होई। १/३८/१

जैसे व्यक्ति स्नान करने के लिए जाए और जल के किनारे तक पहुँच जाय, लेकिन माघ के महीने का ठंड जब उसको लगे, तो लगे कि भई नहाने के लिये आ तो गये हैं, पर अब बिना नहाए ही लौट चलें, तो ठीक रहेगा। इसी प्रकार से गोस्वामीजी ने कहा कि लोग रामकथा में स्नान करने तो आ जाते हैं, पर नासमझी का जाड़ा लगने लगता है –

जड़ता जाड़ बिषय उर लागा।
गएहुँ न मज्जन पाव अभागा।। १/३८/२

इसका अभिप्राय यह है कि अगर कोई व्यक्ति कारखाने में काम करने चले और ध्यान में डूब जाय, तो सत्त्वगुण उसके लिये कोई-न-कोई संकट उत्पन्न करेगा। अगर वह पलंग पर सोया है और वहाँ पर भी कारखाने का निर्माण करने लगे, कर्म का चिन्तन करने लगे, तो उसके लिये वह रजोगुण दुखदाई हो जायेगा। इसलिए प्रत्येक गुण अगर समय पर आवे, तो दुखदाई न बने, पर वैसा हो नहीं पाता है। तो तीसरे प्रकार का जो दुख है, वह गुणकृत दुख है।

इन दुखों से लड़ने की अलग-अलग पद्धतियाँ हैं। कालकृत दुख अथवा यह जो कर्मकृत दुख है, उसे हम कैसे झेलें? कर्मकृत दु:ख को हम कैसे पचावें? इसी प्रकार से गुणकृत दुख का कैसे सदुपयोग करें? इन सब पर रामचरितमानस में अलग-अलग दृष्टान्तों के द्वारा बड़े विस्तार से समझाया गया है। पर उन दु:खों में से एक चौथे दुख की बात कही गई। इन तीनों दुख़ों में तो बेचारा व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं है। अब कोई कर्म हो गया है, तो व्यक्ति क्या करे? काल के कारण जो दुख आया, उसके लिये व्यक्ति क्या करे? गुण के कारण जो दुख आया, उस पर भी व्यक्ति का बस नहीं है, पर चौथा दुख व्यक्ति का ही बनाया हुआ होता है।

इस दोहे में रामराज्य के सन्दर्भ में कहा गया कि एक चौथा दुख वह है, जिसका निर्माण व्यक्ति स्वयं करता है और वह है स्वभावकृत दुख। अपने देखा होगा, कुछ लोग स्वभाव से ही दुख खरीदने की कला में इतने निपुण होते हैं कि वे दुख का विस्तार किए बिना, दुख को बनाए बिना रह नहीं सकते। इसका अर्थ है कि तीन प्रकार के दुखों पर तो व्यक्ति का वश नहीं है, पर चौथे प्रकार का दुख तो व्यक्ति का बनाया हुआ दुख है। इसका सबसे विचित्र दृष्टान्त है सपना। सपना व्यक्ति देखता है और सपना व्यक्ति के मन का ही खेल है। यदि सपना व्यक्ति के मन का ही खेल है, तो वह बढ़िया-से-बढ़िया सपना देखे। लेकिन विचित्र है मन कि वह कल्पना में भी केवल सुखमयी कल्पना नहीं कर पाता है। सुखद स्वप्न कम आते हैं, दु:खदायी स्वप्न अधिक आते हैं। मानो उसके पीछे निहित तात्पर्य यह है कि व्यक्ति का मन दुख-निर्माण की कला में इतना अभ्यस्त है कि वह दुख का निर्माण किए बिना नहीं रह पाता है।

स्वभावकृत दुख का वह दृष्टान्त मैं भूल नहीं पाता हूँ। उन दिनों मैं वृन्दावन आश्रम में रहता था। वहाँ एक पण्डितजी थे। अगर रसोइए ने भोजन बिगाड़ दिया, तब तो रूष्ट होते ही थे कि तूने सत्यानाश कर दिया, लेकिन अगर दूसरे दिन रसोइए ने भोजन अच्छा बना दिया, तो उनका क्रोध

चौगुना बढ़ जाता था। क्यों? वे कहते थे कि आज तुमने जैसा अच्छा भोजन बनाया, वैसा कल क्यों नहीं बनाया? ऐसा लगता है कि कल तुमने जान-बूझकर बिगाड़ दिया। अब ऐसा मन का स्वभाव है। यह स्वभावकृत दुख है। कल बिगड़ गया, तो मन दुखी था ही, पर आज तो आनन्द ले लें। पर जिसका स्वभाव दुख लेने का बन गया है, वह न जाने कितने रूपों में दुख अपने लिये बना लिया करता है।

रामायण में संकेत किया गया कि यह जो चौथा दुख है, वह व्यक्ति का अपना बनाया हुआ है। इसलिये जो स्वभावकृत दुख है, उसके विनाश की प्रक्रिया में व्यक्ति अधिक-से-अधिक चेष्टा करे।

गोस्वामीजी ने रामराज्य के सन्दर्भ में कहा कि सृष्टि में ऐसे जो चार प्रकार के दुख हैं – कालकृत, कर्मकृत, गुणकृत और स्वभावकृत, वे रामराज्य में नहीं थे। गोस्वामीजी ने दूसरा सूत्र दिया, – 'नहिं दरिद्र कोउ' – कोई दरिद्र नहीं था। वे यह भी कह सकते थे कि इन दुखों में से किसी दुख का उनमें अभाव हो गया या चारों दुख का अभाव हो गया, पर सारी सृष्टि तो दुखमुक्त नहीं हो सकती है। पर नहीं, गोस्वामीजी कहते हैं –

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी।
नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी।
सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।। ७/२०/६-८

इस चौपाई में एक ही शब्द बार-बार दुहराया गया – 'सब'। अब इसके अन्तरंग पृष्ठभूमि पर दृष्टि डालने की चेष्टा करें। मैं आशा करता हूँ आप पूरा एकाग्र रहेंगे।

वस्तुत: साधना का जो क्रमिक पक्ष है, उसका श्रीगणेश व्यक्तिपरक है। दृष्टान्त के रूप में मैं यह कहना चाहूँगा कि रामायण के प्रारम्भ में दो व्यक्तियों ने वन की यात्रा की। उनमें से एक व्यक्ति वन में गया और दशरथ बनकर लौटा। एक दूसरा व्यक्ति वन में गया और वह दशमुख बनकर लौटा। आप ध्यान दें। प्रतापभानु राजा बड़े धर्मात्मा थे। वे विन्ध्याचल के वन में शिकार खेलने गये। उस वन में कुछ ऐसी घटना हुई, जिसका परिणाम यह हुआ कि प्रतापभानु राजा अगले जन्म में रावण बना, दशमुख बना। महाराज मनु भी राज्य का परित्याग करके वन में जाते हैं, किन्तु उन्होंने वन में भगवान से ऐसी प्रार्थना करके वरदान पाया कि वे दशरथ बने।

दशमुख और दशरथ कैसे बने? वन क्या है? सांकेतिक भाषा में ऐसे कहेंगे। गोस्वामीजी विनयपत्रिका में वन की तुलना संसार से करते हैं – **संसार कान्तार अति घोर गम्भीर बन गहन तरु कर्म संकुल मुरारी** – अर्थात् संसार एक सघन वन है। मानो संकेत क्या है? संसार के इस वन में दशरथ भी बना जा सकता है और दशमुख भी बना जा सकता है। अगर हम संसार के वन में भटक गये, तो हम रावणत्व की दिशा में चले जाएँगे और संसार के वन में अगर हमने सही मार्ग पा लिया, तो हम दशरथत्व की दिशा में मुड़ेगें।

यहाँ पर सूत्र क्या है? व्यक्ति में सुख पाने की तीव्र अभिलाषा है, पर सुख पाने की तीव्र अभिलाषा रखनेवाला व्यक्ति स्वयं सुख पाने के प्रयत्न में दूसरे का सुख छीनने का प्रयत्न करता है। जब वह दूसरों का सुख छीनने की चेष्टा करता है या अपने को सुखी बनाने के लिये दूसरे को दुख देने में संकोच नहीं करता है, तो परिणाम यह होता है कि जब आप सामनेवाले व्यक्ति से सुख छीनने की चेष्टा करेंगे, तो सामनेवाला व्यक्ति भी तो आपका सुख छीनने की चेष्टा करेगा। **(क्रमश:)**

भजन

सियराम को भज लीजिए

सन्त मैथिलीशरण 'भाईजी'

कृपालु हों जब राम-सिय, आराम सब जन कीजिए
करतार हैं श्रीरामजी, बस नाम उनका लीजिए ।।
हम-तुम तो केवल यन्त्र हैं, यह मन्त्र है बस कर्म का,
करवाएँ तो कर लीजिए, जब न कहें सब छोड़िए ।।
मुट्ठी की सीमा शक्ति की कब तक पकड़ पाएँगे हम,
सियराम के युगपद कमल को शीश पर धर लीजिए ।
घर में विराजें राम-सिय, हनुमान के हिय देखिए ।
क्षण कुछ बचे हैं मैथिली, सियराम को भज लीजिए ।।

स्वामी विवेकानन्द की समदृष्टि

प्रव्राजिका त्यागात्मप्राणा

सारदा मठ, वलसाड़, गुजरात

समता को हम एक आदर्श सामाजिक मूल्य मानते हैं। हमारे देश के संविधान में भी न्याय, स्वातंत्र्य, समता और बन्धुत्व, इन चार वैश्विक मूल्यों को निर्धारित किया गया है। साम्यवाद का बढ़ता प्रभाव, नारी-मुक्ति आन्दोलन, श्रमिकों की घोषणाएँ समता की माँग करते हैं। लोकतन्त्र में मतदान का अधिकार भी सबको समान होता है। इस समता का मूल कहाँ है? उसकी पहुँच कहाँ तक है? – स्वामी विवेकानन्द के जीवन और उक्तियों में हम इन प्रश्नों के सही उत्तर पाते हैं।

१. सर्वं खल्विदं ब्रह्म – महान व्यक्तियों की महानता अधिकतर उनके बचपन से ही बीज रूप में दिखाई देती है। उनके सोचने का ढंग स्वाधीन होता है। स्वामीजी के पिताजी विश्वनाथ दत्त अटर्नी थे, स्वभाव से उदार थे। विभिन्न जाति-धर्मों के लोग उनसे मिलने आते थे। इसलिए बैठकखाने में भिन्न-भिन्न जाति-धर्मों के लोगों के लिए अलग-अलग हुक्के रखे हुए थे। एक दिन बैठकखाने में कोई नहीं है, यह देखकर स्वामीजी, तब छोटे नरेन्द्रनाथ – वहाँ रखे हुए हुक्के में से प्रत्येक हुक्के में मुँह लगा कश खींचकर देखने लगे। जातिभेद की प्रथा ने उनका मस्तिष्क आलोड़ित कर दिया था। इसलिए उन्होंने प्रत्यक्ष परीक्षा कर देख लिया कि जाति नहीं मानने पर क्या होता है?

परवर्ती काल में स्वामीजी के परिव्राजक अवस्था में उत्तर भारत भ्रमण के समय की एक घटना है। वृन्दावन में एक दिन वे चलते-चलते बहुत थके हुए थे। रास्ते की एक ओर एक आदमी धूम्रपान कर रहा था। उन्होंने उस आदमी के चिलम से एक-दो कश खींच देने का आग्रह किया। उस आदमी ने संकोच में अस्वीकार करते हुए कहा, 'मैं भंगी हूँ।' स्वामीजी भी यह बात सुनकर संस्कारों के अनुसार आगे निकल पड़े। जाते-जाते उन्होंने सोचा, "अरे! मैंने तो संन्यास लिया है। जाति-कुल-मान सब छोड़ दिया है।" वे उस व्यक्ति के पास आए और उसकी चिलम से तम्बाकू पी लिया।

इस भारत-भ्रमण में वे एक-बार खेतड़ी में ठहरे थे। एक दिन खेतड़ी के राजा अजीत सिंह ने उनको संगीत-सभा में बुलावा भेजा। स्वामीजी ने संदेश भेजा, 'संन्यासी के लिए इस प्रकार का मनोरंजन अनुचित है।' गणिका ने यह सुन लिया। वह व्यथित हृदय से मानो स्वामीजी को ही उद्देश्य कर गाने लगी -

मेरे प्रभु अवगुन चित न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो, अब मोहि पार करो।।
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परो।
पारस गुन अवगुन नहि चितवै, कंचन करत खरो।।

इस गीत ने स्वामीजी के मन को आकुल-व्याकुल कर दिया। गणिका मानो 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस सत्य का स्मरण करा रही थी। उन्होंने सोचा, 'यह मेरा कैसा संन्यास है? मैं संन्यासी हूँ, तथापि मुझमें और इस नारी में मेरा भेद-ज्ञान बाकी रह गया है।' उन्होंने गणिका से क्षमा माँग ली।

साधना-काल का उनका समदृष्टि-भाव उनके जीवन के परवर्ती काल में परिपक्व रूप में हम देख पाते हैं। परिव्राजक जीवन में वे बिना दुविधा के विभिन्न जाति-धर्मों के लोगों के घर में ठहरते थे। उनके साथ भोजन आदि करते थे। कभी किसी राजा के अतिथि बनते, कभी किसी निर्धन की कुटिया में रहते, तो कभी किसी वृक्ष के नीचे सोकर रात बिताते। राजस्थान में आबू पहाड़ पर स्वामीजी एक मुसलमान वकील के घर निवास कर रहे थे। कुछ दिनों बाद खेतड़ी नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी मुंशी जगमोहन लाल निमन्त्रित हो वकील साहब के घर आए। उन्होंने बातचीत में स्वामीजी से पूछा, 'अच्छा स्वामीजी, आप तो हिन्दू साधु हैं, फिर मुसलमान के घर में आप कैसे रह रहे हैं? आपका भोजन जब-तब मुसलमान से छू ही जाता होगा।' यह प्रश्न सुनकर स्वामीजी ने क्रोध में भभककर कहा, 'आप कहते क्या हैं?

मैं संन्यासी हूँ। मैं आप लोगों के सारे सामाजिक विधि-निषेधों से परे हूँ। मैं भंगी (मेहतर) के साथ भी भोजन कर सकता हूँ। इससे भगवान के अप्रसन्न होने का भय मुझे नहीं है, क्योंकि यह भगवान द्वारा अनुमोदित है। शास्त्र से भी मुझे भय नहीं है, क्योंकि यह शास्त्र द्वारा भी अनुमोदित है। फिर भी आप लोगों का और आप लोगों के समाज का भय मुझे अवश्य है। आप लोग तो भगवान और शास्त्र की भी परवाह नहीं करते। मैं तो देखता हूँ कि विश्वप्रपंच में सर्वत्र ब्रह्म प्रकाशित है। मेरी दृष्टि में ऊँच-नीच नहीं है। शिव! शिव!' स्वामीजी की समदृष्टि वस्तुत: इस ब्रह्मदृष्टि से नि:सृत है।

पाश्चात्य लोगों के बीच में कार्य करते समय संन्यासी होते हुए भी उन्होंने स्त्री-पुरुषों को समान रूप से आध्यात्मिक विचार प्रदान किया। भारत में स्त्रियों और जनसाधारण के लिए वे बड़े चिंतित थे। वे कहते थे कि स्त्रियों और जनसाधारण की अवहेलना ही भारत की अवनति का कारण है। शिक्षा द्वारा उनके उद्धार की आवश्यकता उन्होंने बार-बार प्रतिपादित की है। विदेशों में स्त्रियों की स्वाधीनता और उच्च शिक्षा देखकर वे बड़े ही प्रसन्न हुए थे। शिष्य शरत्चन्द्र चक्रवर्ती महाशय से उन्होंने बातचीत में कहा था, 'तुम्हारे देश की लड़कियों में पढ़ाई के लिए कुछ चेष्टा नहीं दिखाई देती। तुम लोग पढ़-लिखकर आदमी बन रहे हो और जो तुम्हारे सुख-दुख में सहभागी हैं, हमेशा प्राण देकर सेवा करती हैं, उनकी शिक्षा के लिए, उनकी उन्नति के लिए तुम लोग क्या करते हो?' नारियों का विकास नारियों द्वारा ही होना चाहिए, पुरुषों का उसमें हस्तक्षेप न हो, इसलिए वे भगिनी निवेदिता को नारी-शिक्षा के लिए लाये थे। इतना ही नहीं, नारियाँ आध्यात्मिक जीवन यापन कर सकें, इसलिए नारियों के लिए प्रथम स्वाधीन मठ स्थापित करने की उनकी इच्छा थी और उसके लिए उन्होंने चेष्टा भी की थी।

तुच्छ - ताच्छिल्यभाव, दूसरों को नीचा समझने की वृत्ति स्वामीजी जरा भी सह नहीं पाते थे। अमेरिका के दक्षिणप्रान्त में अधिकांश लोग स्वामीजी को निग्रो ही समझते थे। एक दिन रेल से उतरते समय उनका बहुत स्वागत हो रहा है, देखकर एक निग्रो कुली ने उनसे हाथ मिलाकर कहा, 'आप के सम्मान से निग्रो समाज सम्मानित हुआ है।' स्वामीजी ने भी 'धन्यवाद भाई' कहकर उससे हाथ मिलाया। उन्हें कभी निग्रो समझकर होटल, नापित आदि जगह से अपमानित कर हटाया जाता था। बहुत दिनों बाद एक पाश्चात्य शिष्य ने उनसे पूछा था कि उन्होंने ऐसे स्थलों में अपना परिचय क्यों नहीं दिया? स्वामीजी ने उत्तर दिया था, 'क्या दूसरों को छोटा करके मैं बड़ा हो जाऊँ? मैं तो पृथ्वी पर इसलिए नहीं आया हूँ।' सब के प्रति आत्यंतिक आत्मीयता, एकत्वानुभूति उनकी पथप्रदर्शिका थी।

१८९८ में श्रीरामकृष्ण की जन्मतिथि के दिन आए हुए ब्राह्मणेतर भक्तों को स्वामीजी ने शिष्य शरत्चंद्र चक्रवर्ती से गायत्री मंत्र दिलवाया। सबको जनेऊ पहनने दिया। उन्होंने शिष्य से कहा 'सभी हिन्दू आपस में एक-दूसरे के भाई हैं। नहीं छूऊँगा, नहीं छूऊँगा कहते-कहते हमने इन्हें हीन बना डाला है। इसीलिए हमारा देश हीनता, भीरुता, मूर्खता एवं कापुरुषता की चरम सीमा तक पहुँच गया है। ...बतलाना होगा, तुम लोग भी हमारे समान मनुष्य हो, तुम्हारा भी हमारे समान ही, सब अधिकार है।'

इस अनुष्ठान के पश्चात् संन्यासियों ने स्वामीजी को भस्म, कुण्डल, जटाजूट, त्रिशूल, रुद्राक्षों की मालाएँ आदि से शिवजी जैसी वेश-भूषा में सजाया। स्वामीजी ने उसी वेशभूषा में एक-दो भजन गाए। उनके नेत्र अर्धोन्मीलित थे। स्वामीजी ने सहसा अपनी वेश-भूषा उतारकर उससे अपने हाथों से गिरीश बाबू को सजाया। फिर बोले, 'परमहंस देव कहा करते थे कि ये भैरव के अवतार हैं। हम लोगों में और इनमें कोई भेद नहीं।'

भारत की नीतिपरायणता, पवित्रता, सादगी उन्हें प्रिय थी। वे विदेश में जहाँ-जहाँ गए, वहाँ के लोगों के साथ भी उनके घनिष्ठ सम्बन्ध हुए थे। हेल दम्पती को वे फादर पोप, मदर चर्च नाम से संबोधित करते और उनकी बेटियाँ उनके लिए बहनों के समान थीं। मिसेज सेवियर और मिस ओलि बुल को भी वे मदर नाम से संबोधित करते थे। उनके लिए तो 'वसुधा एव कुटुंबकम्' थी।

विभिन्न स्वभावों के व्यक्तियों से समभाव रखना कठिन है। हम तो अपने स्वभाव और अपनी रुचि-अरुचि के मानदंड के अनुसार दूसरों का मूल्यांकन करते हैं। स्वामीजी ऐसे एकांगी भाव की अपेक्षा नहीं रखते थे। स्वामी अभेदानन्द की अध्ययन में बहुत रुचि थी। वे काम करने से अधिक समय पढ़ते थे। इससे उनके गुरुभाइयों द्वारा नाराज होने पर एक दिन स्वामीजी ने कहा था, 'तुम लोगों का एक भाई यदि पठन-पाठन ही लेकर रहे, तो तुम लोगों को इतनी पीड़ा

क्यों होती है? ले आओ, तुम लोगों के कितने हंडे-बर्तन पड़े हैं, मैं सब माँज देता हूँ।'

स्वामीजी ने मठ में नये नियमों का प्रारम्भ किया। नियमित भोर में उठकर जप करने का भी नियम था। इस नियम से असंतुष्ट होकर स्वामी अद्भुतानन्द जी एक दिन मठ छोड़कर जाने लगे। स्वामीजी ने उदारतापूर्वक उनसे कहा, 'तुम्हें वह नियम मानने की आवश्यकता नहीं।' उनके मतानुसार वैविध्य ही जीवन का मूल सूत्र है। इस भिन्नता के कारण हमें लड़ना नहीं चाहिए।

पथभ्रष्ट हुए व्यक्तियों को समाज कभी क्षमा नहीं करता। ऐसे व्यक्तियों के लिए भी स्वामीजी के मन में प्रेम ही था। ठाकुर यदि ऐसे किसी व्यक्ति को आशीर्वाद देने में पीछे हटते, तो स्वामीजी ठाकुर के पीछे पड़कर उस व्यक्ति को आशीर्वाद दिलवाकर ही रहते थे। उनके मतानुसार पतित और तापितों के लिए ही तो भगवान विशेष रूप से आते हैं। ठाकुर भी यह देखकर आनन्दित होते थे। वे तो यही चाहते थे कि नरेन्द्र एक विशाल वटवृक्ष के समान बने, जिसकी छाया में हजारों लोग शान्ति पाएँ।

नैनिताल में दो देवदासियाँ स्वामीजी के दर्शन के लिए गईं। स्वामीजी उनको मना करने के लिए तैयार नहीं हुए, इसलिए वहाँ इकट्ठा हुए लोगों के मन में तूफान खड़ा हुआ। लेकिन स्वामीजी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया।

स्वामीजी की इस समदृष्टि में हम ब्रह्मज्ञानी की सबमें ब्रह्म की अनुभूति करनेवाली ब्रह्मदृष्टि की झाँकी पाते हैं। यही तो है अद्वैत ज्ञान आँचल में बाँधकर संसार में रहना। सामाजिक मूल्य समता का मूल इस अद्वैत सिद्धान्त में दिखाई देता है। आत्मिक स्तर पर हम एक हैं, इसीलिए गुणों के भेद होने पर भी अनजाने में हम समता की अपेक्षा रखते हैं।

२. समत्वं योग उच्यते – आध्यात्मिक समदृष्टि केवल मानव-मानवों की समता से, सामाजिक समता से सन्तुष्ट नहीं होती है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण अनेक बार कहते हैं – 'समत्वं योग उच्यते' – समदृष्टि ही योग है। यह समदृष्टि किस-किस में होनी चाहिए? – 'सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा', 'सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ' 'शुभाशुभ परित्यागी' 'समःशत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः'। स्वामीजी की समदृष्टि इस प्रकार की है। यह विभिन्न अनुभवों में समदृष्टि है, विविध जीवन-प्रणालियों की समान स्वीकृति है, विद्या की विविध शाखाओं में सम रुचि है, विभिन्न मतों का समान सम्मान है।

नरेन्द्रनाथ जब ठाकुर के पास जाते थे, ठाकुर मानो प्रेम और प्रशंसा से उन्हें नहलाते थे। कहते, 'मैं जानता हूँ प्रभु, आप वही पुरातन ऋषि – नररूपी नारायण हैं, जीवों की दुर्गति दूर करने के लिए आप पुनः संसार में अवतीर्ण हुए हैं!' 'जिस प्रकार की एक शक्ति के विकास के द्वारा केशव सेन संसार में विख्यात हुआ है, नरेन्द्र के भीतर ऐसी अठारह शक्तियाँ पूर्ण मात्रा में विद्यामान हैं।' नरेन्द्रनाथ पर उस स्तुति का कुछ प्रभाव न होता था। उलटे वे प्रतिवाद करते हुए कहते 'महाराज, आप कहते क्या हैं? लोग आपकी बात को सुनकर आपको पागल कहेंगे। कहाँ जगद्विख्यात केशव और साधकप्रवर विजय और कहाँ उनके सामने मुझ जैसा एक तुच्छ स्कूल का लड़का!'

एक बार ठाकुर ने एक महीने तक नरेन्द्र से बातें करना छोड़ दिया था। नरेन्द्रनाथ फिर भी हमेशा की तरह आते, दर्शन करके चले जाते। ठाकुर के व्यवहार में इस अचानक परिवर्तन से भी उन पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा था। ठाकुर ने इसीलिए कहा था, 'यह बड़ा आधार है - आध्यात्मिक साधना के लिए यह लड़का योग्य है।' 'शिकागो धर्म-परिषद में जगत के हजारों विद्वान लोगों की स्तुति-वर्षा से वे अविचलित रहे। उनके चरित्र पर झूठे दोष लगाकर उन्हें बदनाम करने का प्रयास किया गया, तब भी वे ध्येय पर अटल रहे। निंदा-स्तुति, यश-अपयश के प्रति यह समदृष्टि उनके अपने जीवन से दूसरों के लिए भी विस्तारित हुई थी। अपनी शिष्या भगिनी निवेदिता के एक पत्र का उत्तर देते हुए वे लिखते हैं – 'कार्य में कूद पड़ने से पहले अच्छी तरह से सोच लो। किन्तु कार्य प्रारम्भ होने पर यदि असफल हो जाओ या कार्य से तंग आ जाओ, तो मैं आमरण तुम्हारे साथ हूँ।' उनके एक शिष्य कृपानन्द वेदान्त समिति के सदस्यों के साथ मतभेदों के कारण कार्य में बाधा डाल रहे थे और अशान्ति का कारण बन रहे थे। लेकिन स्वामीजी ने गुडविन को लिखा, 'मिस वाल्डो से कहना, कृपानन्द को मेरा आन्तरिक स्नेह बताकर उसे कुछ पैसे भेज दें। सन्तान चाहे जैसी हो, या चाहे जो करे, पितृ-स्नेह अमर होता है। वह मेरी सन्तान है - आज दुख में पड़ने से उसका मेरे स्नेह पर अधिकार उतना ही है, बल्कि उससे भी अधिक

है।' उनका यह बिना शर्त प्रेम व्यक्ति के गुणों-अवगुणों पर निर्भर नहीं करता है। इसलिए लगता है, वे मानवी मर्यादाओं के परे हैं। उनसे हम आश्वासन पाते हैं, एक अपरिवर्तनीय आश्रय पाते हैं।

कर्म के बारे में वे कहते हैं, कोई भी कर्म छोटा या बड़ा नहीं होता है। प्रत्येक कर्म की आवश्यकता है, इसलिए प्रत्येक कर्म महत्त्वपूर्ण है। व्यक्ति कौन-सा कर्म करता है, इस पर उसकी महानता का निर्णय नहीं होता है, वह किस प्रकार से कर्म करता है, इससे उसकी महानता का पता चलता है। इसलिए उन्नति के पथ पर वे चाहते थे कि लोहार अच्छा लोहार बने, डॉक्टर अच्छा डॉक्टर बने, हर व्यक्ति अपना अपना कर्म अच्छी तरह से करे। वे चाहते थे मठ के साधु कर्मकुशल हों, वे जूता-सिलाई से लेकर चण्डी-पाठ तक सभी कार्य के लिए तैयार रहें। उनके मतानुसार व्यक्ति की महानता वह सबके सामने बड़े-बड़े कर्म किस प्रकार से करता है, इस पर निर्णीत नहीं होती है, वह हर छोटा-सा भी कर्म कितनी निष्ठा और एकाग्रता से करता है, इस पर निर्णीत होती है।

भारत की दूसरे देशों की स्वाधीनता पर आक्रमण न करने की वृत्ति और धर्मकेन्द्रित संस्कृति पर उनको गर्व था। मातृभूमि से असीम प्रेम था। लेकिन उसके साथ अन्य देशों का भौतिक विज्ञान, तकनीकी उन्नति, स्त्रियों का सम्मान करने की वृत्ति आदि की वे भूरि प्रशंसा करते थे। वहाँ की संघबद्ध होकर कार्य करने की पद्धति को वे भारत में भी ले आए।

विद्या की सभी शाखाओं में उनकी रुचि थी। इतिहास, विज्ञान, गायन आदि का अच्छा अध्ययन भी था। उन्होंने जब विश्वकोश पढ़ना प्रारम्भ किया, तब प्रत्येक दिन वे विश्वकोश का एक मोटा खण्ड पढ़ लेते थे। वे चाहते थे कि मठ के साधु-ब्रह्मचारी अध्यात्मविद्या के साथ आधुनिक विज्ञान में भी पारंगत हों।

वेदान्त की उदारता, सर्वसमावेशिकता, सार्वभौमिकता की वे बार-बार घोषणा करते थे। भगवान बुद्ध के विशाल हृदय के प्रति उनकी असीम श्रद्धा थी। ईसा मसीह के प्रति परम आदर था। उन्होंने गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्दजी को पत्र में लिखा था – 'अनाथाश्रम में सब धर्मों के बच्चों को प्रवेश देना। लेकिन किसी के धर्म को, किसी की अपनी श्रद्धा को नष्ट मत करना। सब धर्मों में जो साधारण नैतिकता है, उसकी शिक्षा बच्चों को देना।' उनके मतानुसार आध्यात्मिक विकास के लिए धर्मान्तरण करने की आवश्यकता नहीं। जो ईसाई है, वह अच्छा ईसाई बने,जो हिन्दू है वह अच्छा हिन्दू बने, सब अपने-अपने धर्म के आश्रय से उन्नति करें।

शिकागो की सर्वधर्म परिषद में उन्होंने घोषणा की, 'हम लोग न केवल सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता में विश्वास रखते हैं, अपितु सभी धर्मों को सच्चा मानकर उन्हें स्वीकार करते हैं। हे प्रभो, तुम ही इन विविध मार्गों का एकमात्र लक्ष्य हो। ... आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घण्टा-ध्वनि हुई है, वह ... एक ही ओर अग्रसर होनेवाले मनुष्यों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्यु-निनाद सिद्ध हो। स्वामीजी के इन आन्तरिक सत्यनिष्ठ शब्दों ने श्रोताओं में आत्मिक एकता का बोध जगाया था। उनमें एक हर्ष-ध्वनि उठी थी। स्वामीजी कहते हैं, 'वैचित्र्य ही जीवन का लक्षण है और प्रत्येक धर्म के भीतर महान सत्य का अंश विद्यमान है। – हमारी नीति वर्जन नहीं, ग्रहण होनी चाहिए। ... अतीत के जितने भी धर्म हैं, मैं उन सब का समर्थन करता हूँ और उनकी उपासना-पद्धति चाहे जो हो, मैं उनमें से प्रत्येक का सहारा लेकर ईश्वर की आराधना करूँगा। मैं मुसलमानों के साथ मस्जिद में जाऊँगा, ईसाइयों के साथ गिरजे में जाकर क्रूस के सामने घुटने टेकूँगा, बौद्धों के मन्दिर में प्रवेश कर बुद्ध तथा संघ की शरण लूँगा और अरण्य में जाकर हिन्दुओं के साथ ध्यान में निमग्न हो, उन्हीं की भाँति सभी के हृदय को उद्भासित करने वाली ज्योति के दर्शन करने का प्रयास करूँगा। केवल इतना ही नहीं, भविष्य में जो कुछ मार्ग आ सकते हैं, उनके लिए भी मैं अपने हृदय को उन्मुक्त रखूँगा।' हम लोग 'धर्मसमन्वय' 'धर्मनिरपेक्षता' की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। स्वामीजी का धर्मसमन्वय उनकी सर्वग्रहणशीलता का एक सहज अंग मात्र है। उनके विशाल हृदय की सर्वसमावेशिकता का एक पहलू मात्र है।

सहस्रद्वीपोद्यान से उन्होंने मेरी हेल को लिखा था, 'मेरी भेदबुद्धि, भले-बुरे का बोध, भ्रम और अज्ञान सब लुप्त हो गये हैं, मैं गुणातीत राज्य में विचरण कर रहा हूँ। किस नियम को मानूँ और किसका लंघन करूँ? उस उच्च भावभूमि से यह ब्रह्माण्ड कीचड़ के एक लोदे के समान प्रतीत होता है। हरि ॐ तत्सत्। केवल उन्हीं का अस्तित्व है, और किसी चीज का नहीं, मैं तुममें हूँ, तुम मुझमें हो। हे प्रभो! तुम्हीं मेरे चिर आश्रय बनो। शान्तिः शान्तिः शान्तिः।'

जुलाई, १८९६ में लन्दन से फ्रांसिस लेगेट को वे लिखते हैं, 'तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मैं भी दिनों-दिन धैर्य और सहानुभूति के पाठ सीख रहा हूँ। लगता है, अब मैं क्रमश: उस अवस्था की ओर बढ़ रहा हूँ, जब मैं साक्षात् 'शैतान' से भी,यदि वैसा कुछ हो, तो प्रेम कर सकूँगा। ... ऐसा अनुभव करता हूँ कि मैं प्रत्येक प्राणी और वस्तु को आशीर्वाद दूँ, प्रत्येक से प्रेम करूँ और गले लगा लूँ। मैं यह भी देखता हूँ कि बुराई भ्रान्ति मात्र है।...वास्तव में ये सब हैं मानो पाठशाला के हल्ला मचानेवाले बच्चे, जो कि इस संसाररूपी मैदान में खेल-कूद करने के लिए छोड़ दिए गए हैं। किसकी प्रशंसा करूँ और किसे बुरा कहूँ, सब उसी का खेल है।' ब्रह्मज्ञ पुरुष सर्वत्र ब्रह्म दर्शन करते हैं। जगत की भिन्नता में वे देखते हैं – वैविध्य को जो कि ईश्वर का ऐश्वर्य है। श्रेणीगत भेद वे देख ही नहीं पाते।

उन्होंने अपने व्याख्यानों में बारम्बार कहा हैं, 'भेद देखना ही समस्त दुखों का कारण है।' 'एकांगी भाव जगत के लिए अति अनिष्टकर है।' इसलिए उन्होंने अलग मार्ग अपनाया है, 'मैं यहाँ यह देखने नहीं आया कि हमारे बीच क्या-क्या मतभेद है, वरन् मैं तो यह खोजने आया हूँ कि हम लोगों की मिलन-भूमि कौन-सी है। मैं यह जानने का प्रयास कर रहा हूँ कि वह कौन-सा आधार है जिस पर हम लोग आपस में सदा भाई बने रह सकते हैं।' वह आधार उन्होंने ढूँढ़ भी लिया है, 'यदि सारी विभिन्नताओं के अन्दर ईश्वर के एकत्व पर विश्वास किया जाए, तो सब प्रकार से संसार का कल्याण होगा।'

वे हमें सब द्वन्द्वों के पार ले जाना चाहते हैं। इसीलिए सहस्त्रद्वीपोद्यान में उनके मुँह से निकली हुई अमृतवाणी हमें उच्च-स्तर पर उठा लेती है। वे कहते हैं, 'मन जब स्थिर और शान्त होता है, तब अच्छा-बुरा कुछ भी उसे स्पर्श नहीं कर पाता। हृदय को समुद्र के समान महान बना लो, संसार के क्षुद्र भावों के परे चले जाओ; इतना ही नहीं अशुभ आने पर भी आनन्द से उन्मत्त हो जाओ।' 'मैं जब सबल हो जाऊँगा, तब मैं अन्य सभी लोगों के भावों को अनुभव कर सकूँगा, उन भावों के साथ सम्पूर्ण सहानुभूति रख सकूँगा।'

लेकिन यह जीवन जीने की ऐसी कला है, जो जीवन के ही पार ले जाती है। जब हम कुछ भी बुराई नहीं देख पाएँगे, तब हमारे लिए जगत्प्रपंच भी नहीं रहेगा, क्योंकि प्रकृति का उद्देश्य ही है हमें इस भ्रम से मुक्त कराना'।

वे The song of the sannyasi (संन्यासी का गीत) में संन्यासी से कहते हैं –

उन्हें निज जीवन-बन्धन जान,...
प्रेम-घृणा, सद्-असद्, सभी ये द्वन्द्वों के संधान

इस बंधन से छूटने का मार्ग है –

तुम्हीं हाथ में पकड़े हो वह पाश
खींच रहा जो साथ तुम्हें! तो उठो, बनो न हताश
छोड़ो कर से दाम.....

हाँ, हमने ही भेददृष्टि की वह डोरी हाथ में पकड़े रखी है। वही माया का पाश है। हमें बस मुट्ठी खोल देनी है। 'जीवन का अर्थ ही है साम्य भाव की विच्युति। जिन्होंने समत्वभाव को प्राप्त कर लिया है, वे ब्रह्म में अवस्थित कहलाते हैं।'

स्वामीजी की इस समदृष्टि में एक ओर हम पाते हैं – जगत में सामंजस्य स्थापित करने का मार्ग और दूसरी ओर इसी में है मुक्ति का मार्ग, आनन्दधाम ले जानेवाला मार्ग! ○○○

भजन

मन रे ! रामकृष्ण-गुण गाओ

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

मन रे ! रामकृष्ण-गुण गाओ।
रामकृष्ण का नाम भजन कर, हृदय-कमल में बिठाओ।।
विषय-राग को तजकर रे मन, रामकृष्ण ही ध्याओ।
प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल उनका, नाम ही जपते जाओ।।
रामकृष्ण के नामसुधा का, अविरल सुख तुम पाओ।
रामकृष्ण के नाम-जपन से, विषय-विराग बढ़ाओ।।
रामकृष्ण के संदेशों को, सब भक्तों को सुनाओ।
रामकृष्ण के नाम-जपन में, सदा मगन हो जाओ।।
रामकृष्ण हैं सबके स्वामी, यही बोध उर लाओ।
रामकृष्ण ही परम सत्य हैं, यह मन को समझाओ।।
रामकृष्ण प्रभु विश्वरूप हैं, कृपा उन्हीं की पाओ।
जड़-चेतन में वहीं समाये, इसे न तुम बिसराओ।।
रामकृष्ण प्रभु की महिमा को, दिग-दिगंत फैलाओ।
रामकृष्ण कहते-कहते ही, परम तत्त्व तुम पाओ।।

२०

प्राण दे देंगे, लेकिन झुकेंगे नहीं

ब्रह्मचारी विमोहचैतन्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर

मुगलों के शासनकाल में सरहिन्द के नवाब वजीर खाँ ने अल्प आयु के दो वीर बालकों को अपने दरबार में पेश करने का आदेश दिया। उन बालकों ने सभा में पहुँचते ही बिना किसी डर के, ''जो बोले सो निहाल, सत श्री अकाल'' का जोर से जयकारा लगाया। दोनों बालकों को वजीर खाँ ने इस्लाम धर्म कबूल करने को कहा। उन दोनों को वजीर खाँ के सामने सिर झुकाकर सलामी देने के लिए कहा गया। सिर ऊँचा कर निडरता से दोनों ने यह उत्तर दिया, 'हम अकाल पुरख और अपने गुरु पिता के सिवाय किसी अन्य के सामने सिर नहीं झुकाते'। हमारी लड़ाई अन्याय, अधर्म और अत्याचार के खिलाफ है। हम तुम्हारे इन अत्याचारों के विरोध में अपने प्राण दे देंगे, परन्तु झुकेंगे नहीं। ये वीर बालक सिखों के दशम गुरु श्रीगुरु गोविन्द सिंह जी के दो नन्हें वीर पुत्र, साहिबजादे जोरावर सिंह (आयु ७ वर्ष) और फतेह सिंह (आयु ५ वर्ष) थे।

सरहिन्द के नवाब वजीर खाँ ने पहाड़ी राज्यों के शासकों के साथ मिलकर गुरु गोविन्द सिंह से अपील की थी कि वे आनन्दपुर किला छोड़ दें तथा कुरान और गो माता की कसम खाकर उन्हें आश्वासन दिलाया कि वे उन पर हमला नहीं करेंगे। गुरुगोविन्द सिंह जी ने वजीर खाँ की इस शर्त को स्वीकार किया और आनन्दपुर किले खाली करके अपने परिवार के साथ सिरसा नदी की ओर बढ़ने लगे। परन्तु वजीर खाँ अपने वादे से पलट गया और जब उन्होंने किला छोड़ा, तो धोखे से गुरु गोविन्द सिंह के परिवार पर हमला किया। सिरसा नदी पर उनका परिवार बिछुड़ गया, जहाँ बड़े पुत्र वीर अजित सिंह और वीर जुझार सिंह गुरुजी के साथ चले गए और छोटे पुत्र जोरावर सिंह और फतेह सिंह गुरु माता गुजरी देवी के साथ रह गए। उन्हें किसी भी रास्ते का पता नहीं था। रास्ते में उन्हें गंगू मिला, जो किसी समय गुरुजी के महल में नौकर था। उसने बड़ी चालाकी से माता गुजरी देवी को यह दिलासा दिलाया कि वह उनका परिवार के साथ पुनर्मिलन करवा देगा। उसके बाद वे उसके घर में रुक गए। गंगू ने लालच में आकर वजीर खाँ को उनके बारे में उसके वहाँ ठहरने की सूचना दी, जिसके बदले में वजीर खाँ ने उसे सोने की मोहरें भेंट के रूप में दी। इस प्रकार वजीर खाँ ने तुरन्त ही तीनों को गंगू के घर से हिरासत में ले लिया और उन तीनों को रातभर ठिठुरती ठण्ड में महल के सबसे ठण्डे स्थान (बुर्ज) पर रखा।

अगले दिन गुरुजी के दोनों वीर पुत्रों को वजीर खाँ के सामने पेश किया गया, जहाँ भरे दरबार में उन्हें धर्म-परिवर्तन करने के लिए मजबूर किया जाने लगा, परन्तु दोनों ने भरी सभा में वजीर खाँ की उपस्थिति में यह कहा - हम आपकी बात मान कर अपने दादा की कुर्बानी व्यर्थ नहीं जाने देंगे। यदि हमने सिर झुका दिया, तो अपने दादा को क्या जवाब देंगे जिन्होंने धर्म के नाम पर अपना सर कलम करवाना उचित समझा, परन्तु वे झुके नहीं। यह देखकर सब अचम्भित हो गए। वजीर खाँ यह सुनकर बौखला गया। वजीर खाँ की सभा में इतनी हिम्मत कोई नहीं कर सकता था। दोनों वीर बालकों को डराकर, धमकाकर धर्म कबूल करने के लिए दबाव डाला गया, यहाँ तक कि उन्हें अनेक प्रलोभन दिए जाने लगे परन्तु वे अपने निर्णय पर अटल रहे। अब वजीर खाँ उन पर आग-बबूला हो गया और अपने काजी को बुलाकर उन्हें जिन्दा दीवार में चुनवाने की सजा सुनाई। जब उनको दीवार में चुनवाना आरम्भ किया, तब वे जपुजी का पाठ करने लगे और दीवार पूरी होने के बाद अन्दर से जयकारा की आवाज आने लगी। कुछ समय बाद, वे दोनों अभी भी जिन्दा हैं या नहीं, यह देखने के लिए दीवार को तोड़ दिया गया, परन्तु अभी तक भी दोनों की श्वास चल रही थी। मुगलों की क्रूरता अपने चरम पर थी, उन्होंने बड़ी बेरहमी और निर्दयता से उन दोनों वीर बालकों को गले काटकर मौत के घाट उतार दिया। बाद में जब गुरु माता गुजरी देवी को अपने पौत्रों की शहीदी का पता चला तो उन्होंने अरदास की और अपना शरीर त्याग दिया।

ये नन्हें वीर, अपनी अतुलनीय वीरता और साहस का परिचय देते हुए अन्तिम साँस तक अपने निर्णय पर अडिग रहे तथा अपने धर्म की रक्षा एवं आन-बान और शान के लिए दृढ़निष्ठा का पालन करते हुए, अकाल पुरख की गरिमा को गौरवान्वित कर वीरगति को प्राप्त हुए। उनकी इस गरिमामयी शहादत के लिए हम उनको कोटि-कोटि नमन करते हैं। ○○○

मन पर कठोर शासन कर उसे भगवान में लगाओ

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

अपने मन की विचार-शृंखला को जानो। हमारा मन क्या कर रहा है, क्या सोचता है, इस संकल्प-विकल्पकारी शक्ति को ही हम मन कहते हैं। सारा सम्बन्ध मन से है। मन ही मनुष्य के बन्धन और मुक्ति का कारण है – मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:। इसलिए मन पर दृष्टि रखना चाहिए। मैं मन नहीं हूँ, मन मेरा है, यह सोचना चाहिए। परन्तु व्यवहार में मन हमें बहुत विवश कर देता है। मन का एक अंग विवेक है। विवेक सत्य और असत्य का विचार करता है, अच्छे-बुरे का विचार करता है, हमें सन्मार्ग पर चलाता है।

यदि हम आध्यात्मिक जीवन जीना चाहते हैं, तो हमें अपने मन पर दृष्टि डालनी पड़ेगी। हमारी विडम्बना यह है कि हम अपने मन पर दृष्टि रखने के बदले दूसरे के दोषों पर अधिक दृष्टि रखते हैं। जन्म-जन्मान्तर के संस्कार से यह मन बना है। कम-से-कम इस जन्म में इसे अपने भीतर दृष्टि डालने का अभ्यास कीजिए। दूसरों के दोषों पर दृष्टि न डालकर भगवान के रूप को देखने का अभ्यास डालना होगा। हमारे मन में जहाँ जितनी आसक्ति है, यदि हमने इसको सही दिशा नहीं दी, तो जन्मभर इसकी आदत ऐसी ही रहेगी और मरने पर हमारे साथ इसके संस्कार भी जाएँगे। अत: मन के चिन्तन और इसकी क्रियाओं से सावधान रहें। मानसिक दुश्चिन्ताओं को विवेक से हटाना पड़ेगा। मरते समय जिन कर्मों की याद हमें तीव्रता से रहेगी, वैसा हमें अगला जन्म मिलेगा। इसलिये महापुरुषों ने कहा है कि भगवान का सतत नाम-स्मरण करो। अन्त समय भगवान का नाम मुख में आयेगा, तो हमें सद्गति मिलेगी।

मरते समय मन में ये बात आ गयी कि यह जो कुछ है, सब भगवान का ही है, उन्होंने सब कुछ किया है। भगवान ने संसार में हमें ऐसा रखा है, ये सब उन्हीं की इच्छा है। ऐसा सोचने से उसी समय मुक्ति हो जायेगी। इसलिये भगवान का स्मरण, भजन, नाम-जप करना चाहिए। यह जीवन गतिशील है। एक न एक दिन हमारी शक्ति समाप्त हो जायेगी। शरीर हमारा शिथिल हो जाएगा। मन में वैसा उत्साह नहीं रहेगा, तब क्या भजन होगा? इसलिए भगवान का भजन करो। इससे भगवान की कृपा होगी। तब जीवन सुधर जायेगा। शरीर के अंग-प्रत्यंग काम करना बंद कर देते हैं, उसी को मृत्यु कहते हैं। यदि हम भगवान का भजन करते रहेंगे, भगवान का स्मरण करते रहेंगे, तो हमारी मृत्यु भी सुधर जाएगी। ईश्वर की कृपा और अपने सुसंस्कार से केवल भगवान की ही याद अन्त में रहेगी।

हमें जीवन में किसको अधिक महत्त्व देना है? हमें तो भगवान को ही अधिक महत्त्व देना है। भगवान को ही अधिक महत्त्वपूर्ण समझना है। वैसे तो हमारी स्वाभविक रुचि आध्यात्मिकता में नहीं है। हम साधना को अधिक महत्त्व नहीं देते। लेकिन जीवन में शान्ति पाने के लिये हमें भगवान का आश्रय लेना ही होगा। इसके लिये साधना करनी पड़ेगी। साधना कल नहीं, आज ही करनी होगी। जब अपने मन के ऊपर आसन लगायेंगे, तभी आपकी साधना होगी। नहीं तो मन को थोड़ा-सा भी ढीला छोड़ दिया, तो साधना नहीं होगी। हम कड़ाई से नहीं करेंगे, तो हमारा नियम नहीं होगा। इसलिए आध्यात्मिक जीवन में निष्ठा अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा करने से इसका अन्तिम समय तक बहुत लाभ मिलेगा। बिना साधना से कुछ भी नहीं मिलनेवाला है। जप का अभ्यास करते-करते जड़मति भी सुजान बन जाता है।

जब तक जीवन में भगवान के आवश्यकता की तीव्रता का बोध नहीं होगा, तब तक कुछ नहीं होगा। गुरु द्वारा प्रदत्त मंत्र को निष्ठापूर्वक जप करना चाहिए। साधना में प्रमाद न हो। ऐसा जीवन में कभी न हो कि आज हमने जप नहीं किया। ऐसा होने पर हमें अपने मन को नियम में रखना चाहिए, उस पर कठोर शासन करना चाहिए। कठोर नियम से संसार की वासनाओं से मुक्ति होती है। जीवन में नियम-निष्ठा अवश्य होनी चाहिए। इससे चरित्र बनता है। इससे जीवन के किसी भी क्षेत्र में हम सबल रहेंगे। ○○○

यशोदानन्दन श्रीकृष्ण : आत्मसंयम योग की पूज्य मूर्ति

सन्त मैथिलीशरण 'भाईजी'

संस्थापक अध्यक्ष, श्रीरामकिंकर विचार मिशन, ऋषिकेश

भगवान श्रीकृष्ण में जो संयम की तकनीक है, वह अभूतपूर्व है। जो मुरली बजाकर हृदय में बस जाते हैं और जिनकी शंख-ध्वनि को सुनकर कौरव सेना की हृदय-गति थम जाती है।

एक ओर गाय का दोहन करने के लिये जिस पाश का उपयोग वे गाय के पैर बाँधने के लिये करते हैं, दूसरी ओर अपनी भुजाओं के पाश में अपने भक्तों को बाँधकर उनको अपने हृदय में रख लेते हैं, उनको किसी को अपना बनाने के लिये कोई प्रयास नहीं करना पड़ता है, सब स्वत: उनके हो जाते हैं।

जो सब होगा, वह सबकी तरह नहीं होगा, जो सबका होगा, वह किसी एक का नहीं होगा, जो सबमें होगा, वह किसी एक में नहीं होगा। ऐसे हैं श्रीकृष्ण।

जैसे देवकी और यशोदा में, वैसे ही नन्दबाबा और वसुदेव में उनका व्यवहार और संयम दिखता हैं, स्वयं कारागार में प्रकट होकर भी कंस के पिता उग्रसेन को कारागार से मुक्त कराने का संयम उनके आचरण में दिखता हैं। कृष्ण तो आकाश हैं, वायु हैं, पृथ्वी हैं, सूर्य, चन्द्र और समुद्र हैं। वे न बाँधते हैं, न ही बँधते हैं। वे बिना रस्सी के स्वयं बँध जाते हैं, पर रस्सी से माँ भी नहीं बाँध पायी, क्योंकि राधारानी बाँधना चाहती थीं और यशोदाजी बाहर अभिनय कर रही हैं कि कृष्ण बँध जायँ, पर भाव से चाह रही हैं कि लाला को कष्ट होगा।

वह यशोदानन्दन भी है, देवकीनन्दन भी है, वह वसुदेव-नन्दन भी है और नन्दनन्दन भी है, वह गोपियों में भी उसी मात्रा में है और राधा में भी उतनी मात्रा में, वह रूक्मिणी में भी है और सत्यभामा में भी है, वह सबको एक साथ यह अनुभूति कराता है कि 'कन्हैया तो केवल हमारा है'। वह 'केवल' न होकर 'कैवल्य' होकर भी सबको केवल अपना लगता है। यह है कृष्ण का आत्मसंयम, जिसका उद्घोष कुरुक्षेत्र की रणभूमि में रणछोड़ कृष्ण ने ही आत्मस्वरूप पार्थ - अर्जुन के समक्ष किया। जो सूर्य में अग्नि रूप में हैं, चन्द्रमा में अमृत रूप में है तथा पूर्ण निरपेक्ष रूप से सारी सृष्टि को अदृश्य रहकर समान सुख देते हैं, यह भी उनका आत्मसंयम योग है।

कब, कितना, कहाँ और कब तक, इसी का नाम तो आत्मसंयम है। इसी का अभाव असंयम है।

किसी दूसरे देश के असंयम से कभी सीमा पर तनाव बढ़ जाने पर दोनों देशों के भाषा-भाषी जिस-जिस भाषा का लेखन और वाचन करते हैं, उस देश का राष्ट्राध्यक्ष भी यदि आत्मसंयम न रखे और सामनेवाला जो जैसा कहे उसी के प्रतिकार का ध्यान रखकर सारे निर्णय करने लगे, तो फिर सारे देशवाशी तो कुछ दिन में ही अल्पायु हो जायेंगे।

भगवान कृष्ण में संयम है, जन्मजात संयम है। हिंसा और अहिंसा उनके चिन्तन और प्रतिपादन का विषय कदापि नहीं है, अपितु किस समय हिंसा और किस समय अहिंसा का संयम, कृष्ण का संयम एवं उनकी व्यापकता है।

वास्तव में संसार और संसारी मनुष्यों को अतिरेकवादी जीवन और अतिरेकपूर्ण चिन्तन ही पसन्द है, क्योंकि उससे व्यक्ति को अपनी विशेषता या अपनों की विशेषता का ज्ञाता कहलाने की सुविधा मिल जाती है, पर यह निश्चित है कि किसी भी विचार का अतिरेक किसी व्यक्ति-विशेष को, किसी पन्थ-विशेष का प्रवर्तक बना सकता है, पर कृष्ण नहीं बना सकता है। वह शाखाएँ फैला सकता है, पर मूल नहीं हो सकता है, कृष्ण क्योंकि वासुदेव हैं, 'वासे वासे तिष्ठति' हैं।

वाणी का संयम, भोजन का संयम, आचरण का संयम, व्यायाम का संयम, विश्राम में संयम, श्रम में संयम, निद्रा में संयम, संयम आकाश के सदृश बहुत व्यापक शब्द है। यह संयम प्रथम सोपान में उतना आकर्षक भले ही न लगे, पर अन्तिम सोपान तक ले जाने का एकमात्र साधन अवश्य है।

गीता के छठवें अध्याय में राधेश कृष्ण केवल इसी सूत्र को विस्तार में बताते हैं और कहते हैं – पार्थ! क्या तुम समझते हो कि अग्नि का त्याग कर देना, कर्म का त्याग कर देना, हिंसा का त्याग कर देना, ऐश्वर्य का त्याग कर

देना, या केवल इन्हीं के आश्रित होकर भोगों के पराधीन रहना योग है? नहीं पार्थ, वह योग नहीं, वह अतिरेक हैं।

मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः।[१]

– मन का विषय मुझको बना लो और मुझ पर आश्रित होकर शरणागत हो जाओ। किसी के कहने और उकसाने पर भी तनिक भी विचलित हुए बिना अपने संकल्प में स्थित रहो।

वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः।[२]

ऐसा आत्मसंयमी व्यक्ति कभी भी ईश्वरविमुख होता ही नहीं है। ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण रूप से समर्पित रहना ही आत्मसंयम है, योग है, योग का फल है। ईश्वर के प्रति समर्पण न तो सर्वत्याग से होता है और न ही भोगी बनने से ही सम्भव है। वह तो मात्र आत्मसंयम से ही सम्भव है, जो मन, बुद्धि, चित्त को ईश्वर में केन्द्रित करने से ही होता है।

रामराज्य संयम का परिणाम है और महाभारत असंयम का। युग-तुलसी श्रीरामकिंकर जी महाराज कहा करते थे कि यदि त्रेतायुग में कैकेयी के गर्भ से भरत के स्थान पर दुर्योधन पैदा हुआ होता, तो रामायण में भी महाभारत होता और द्वापर में यदि गान्धारी के गर्भ से दुर्योधन के स्थान पर भरत का जन्म हुआ होता, तो महाभारत में भी रामायण ही होता।

आत्मसंयम के मूर्तरूप हैं श्रीराम और श्रीकृष्ण। हमें तो केवल इनको धारण करना है और अपनी धारणा को संशोधित करना है। शौर्य के साथ धैर्य, सत्य के साथ शील, क्षमा, कृपा, समता को जब तक एक सूत्रता में नहीं लाया जाता, तब तक व्यक्ति का सृजन ही उसे दुख देगा। ज्ञान और विज्ञान का संयम होना आवश्यक है। शास्त्रोक्त बातों को समझना ज्ञान और उसको अपने हृदय में अनुभव करना विज्ञान है –

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः।।[३]

○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. श्रीमद्भगवद्गीता ६/१४, **२.** वही, ६/२१, **३.** वही, ६/८.

प्रेरक लघुकथा

करनी को 'किया' कहे कथन गलत नहिं होय

डॉ. शरद चन्द्र पेंढारकर

तीर्थंकर महावीर की पुत्री प्रियदर्शना का विवाह राजकुमार जमाली से हुआ। किन्तु कुछ समय पश्चात् जब उसने महावीरजी से प्रवज्या ग्रहण की, तो प्रियदर्शना भी साध्वी बन गई। एक बार ध्यान-धारणा के बाद जमाली को शिथिलता का अनुभव होने पर उसने एक शिष्य से बिछौना लगाने को कहा। शिष्य उस समय किसी काम में व्यस्त था। उसने 'हाँ' कहकर अपना काम जारी रखा। थोड़ी देर बाद जमाली ने पूछा, ''बिछौना लगा दिया?'' 'हाँ, लगा दिया', कहकर वह शिष्य बिछौना लगाने लगा। इस पर जमाली ने उससे कहा, ''तुम्हारा उत्तर गलत था। 'तुम्हें बिछौना लगा दिया' कहने के बदले 'बिछौना लगा रहा हूँ' कहना था।'' प्रियदर्शना ने भी पति के कथन का समर्थन किया।

थोड़ी दूरी पर ढक नामक एक शिष्य कोई काम कर रहा था। उसने जब यह संवाद सुना, तो उसे जमाली का कथन सही प्रतीत नहीं हुआ। उसने समीप ही डोरी पर सूख रहे साध्वी के वस्त्र पर एक तिनका फेंककर उसे सुलगा दिया। जब वस्त्र जलने लगा, तो वह ढक से बोली, ''तुम्हारे प्रमाद के कारण मेरा वस्त्र जल गया।'' यह सुनते ही ढक ने कहा, ''वस्त्र अभी जला नहीं, जल रहा है। जो वस्त्र अभी जला नहीं, उसे 'जल गया कहना', क्या गलत नहीं हुआ? आपके पूर्व कथन से क्या विरोधाभास नहीं हुआ?'' प्रियदर्शना को पति का समर्थन करने की गलती का बोध हो गया। उसने कहा, ''पति का कथन सही नहीं था। उनके कथन की मैंने जो पुष्टि की, वह उचित नहीं था।''

कुछ भी करने का नाम कर्म है। जो की जा रही हो, वह क्रिया होती है। क्रिया कर्म के पूरा होते तक जारी रहती है। 'किया' कहना और क्रिया का उसी प्रकार का सम्बन्ध होता है, जिस प्रकार चन्द्रमा के बिना रात का, सूर्य के बिना दिन का, शस्त्रों के बिना सूरमां का, आभूषणों के बिना रमणी का और अनुभवों के बिना ज्ञानी का होता है। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (९८)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

०१-११-१९६३

प्रश्न : – हमारे संघगुरुगण दीक्षा देते हैं। क्या उससे उन्हें शिष्यों का पाप ग्रहण करना पड़ता है?

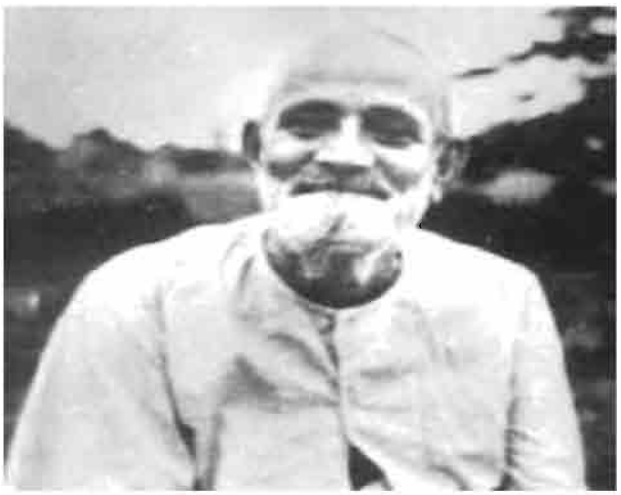

स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज

महाराज – गुरु दीक्षा देते हैं, किन्तु इसके साथ पाप-ग्रहण, शक्ति-संचार का कोई सम्बन्ध नहीं है। संघ के आदेश से एक साधु चंदा एकत्र कर रहे हैं, एक साधु दीक्षा दे रहे हैं, सबका दायित्व संघ का है। चापरास अर्थात् ईश्वरीय आदेश का अर्थ है – संघ का आदेश। अपना-अपना अलग मन्त्र जपने से सन्देह रहता है, इसके अतिरिक्त इस संघ में एक साधन-प्रणाली प्रचलित हुई है, इन सब मन्त्रों का जप करके साधु लोग मुक्त हुए हैं। जो मन्त्र लेता है, उसकी मानसिक अवस्था पर अनुभव निर्भर होता है। मन्त्र से बाधा दूर होती है। हमारे संघ में जो लोग दीक्षा देते हैं, वे लोग प्रतिमा मात्र होते हैं। एक प्रतिमा को विसर्जित करके अन्य प्रतिमा को बैठाते हैं। किन्तु अनेक प्रतिमाओं से एक ही देवता की पूजा होती है, इसीलिए हमलोगों के गुरु ठाकुर हैं, उनकी प्रतिमा विभिन्न समयों में विभिन्न प्रकार की होती है।

प्रश्न – काशी में तो कितने ही साधु रहते हैं – माँ के शिष्य, महाराज (राजा महाराज) के शिष्य, किन्तु इनके जीवन में उत्तराखण्ड के साधुओं की तरह त्याग का तेज या किसी शक्ति का प्रकाश क्यों नहीं दिखता है?

महाराज – हमारे यहाँ जो लोग आते हैं, उनके जीवन में उस तरह के साधन-भजन की प्रवृत्ति या स्पर्धा नहीं दिखती है। किन्तु मन के एक भाग में ठाकुर और उनके शिष्यों के प्रति एक अनिर्वचनीय आकर्षण का अनुभव रहता है। इसीलिए इन लोगों के जीवन में मन:शक्ति नहीं दिखती है। इन लोगों का उधर आकर्षण नहीं है। ठाकुर को अपना आत्मीय समझते हैं। दो-चार दिन रहकर, यहाँ के लोगों के साथ घुलमिल कर एक घर के हो जाते हैं। बच्चे के घर आने पर माँ बच्चे के आनन्द के लिए मन-प्राण लगाकर भोजन बनाती है, किन्तु बच्चा गली-मुहल्ले में घूमता रहता है। बच्चा भी जानता है कि उसकी माँ उसके लिये भोजन बना रही है। उसी तरह हमलोग जानते हैं कि हमारे एक जन हैं। यह अपने मन का बोध ही मरते समय 'जय रामकृष्ण' कहकर मुक्त कर देता है।

महाराज – (संघ में सद्य: सम्मिलित होनेवाले एक ब्रह्मचारी के प्रति) अभी तुमने हमारे घर (संघ) में जन्म लिया है। अब यहाँ के सबको, सभी साधु-भक्तों को समझना कि ये तुम्हारे अपने लोग हैं।

पहले के समाज के बारे में महाराज कहते हैं – एक बार मेरे पूर्वाश्रम में एक सुपारी-चोर पकड़ा गया। उसके हाथ-पैर को खूँटियों से बाँधकर १० बजे तक जो लोग आए, वे उसे थप्पड़ मारते रहे। तदुपरान्त उसने भोजन किया। एकबार एक व्यक्ति युगी ब्राह्मण का वेश बनाकर ब्राह्मणों के साथ भोजन करने बैठा था। वह कितनी मार खाया था! चबूतरे पर घूमते-घूमते चीत्कार कर रहा था।

मन में यही सब संस्कार है। कितने लोगों का चेहरा याद आता है – घर, सिलहट आश्रम, ढाका, स्वर्गाश्रम मठ, सारगाछी, काशी, फिर कितने घर-बार, जमीन-जायदाद।

किन्तु यह सब कुछ भी नहीं रहेगा। मरने के समय केवल संस्कार बचा रहेगा।

०४-११-१९६३

महाराज – (पूर्वोक्त नए ब्रह्मचारी से) ठाकुर के साथ कुटुम्बी-भाव हुआ है? एक प्रकार का सम्बन्ध हुआ है न? ठाकुर को शान्त-दास्य-सख्य-वात्सल्य आदि में से एक भाव से तो पकड़ना होगा। इसके बिना हमलोगों का कैसे कोई सम्बन्ध होगा? ठाकुर की जीवनी तुमने पढ़ी है? कौन अधिक अच्छा लगता है? – ठाकुर, माँ या स्वामीजी? शरीर को ठीक रखो। अधिक दवा मत खाना। व्यायाम करो। स्वामीजी ने कहा है – 'शरीरमाद्यम्'। इस पथ की प्रमुख बात है – 'तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान'। Power of Endurance सहनशक्ति बढ़ानी होगी। सहनशीलता चाहिए। जब तक संन्यास न हो, तब तक चुपचाप रहना। इसके बाद संन्यास हो जाने पर बिलकुल शास्त्र-अनुसार तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर को कर्मफल अर्पण) लेकर रहना और Strict Discipline (कठोर अनुशासन)। तप का अर्थ है – कर्मयोग। जब किसी शैक्षणिक संस्थान में रहोगे, तब खूब समय पाओगे। किसी भी चीज में अधिक दिमाग मत लगाना। चुपचाप काम करते जाना। सुबह-शाम पर्याप्त समय पाओगे।

एक व्यक्ति ने कहा – अभी तो काम से छुट्टी मिली है, यहाँ केवल काम और काम!

महाराज – काम कैसे करोगे? काम में आनन्द नहीं मिलता। साक्षात् पूर्णब्रह्म जीव के दुखों से कातर होकर अवतार लेकर आए हैं। मैं भी जितना कर सकता हूँ, उतना उनके कार्य में सहायता करता हूँ, यह उत्साह यदि कर्म के पीछे न रहे, तो वह कार्य कुली का कार्य (भारस्वरूप) हो गया।

१९-११-१९६३ के पत्र में रमानन्द महाराज को सेवक बताता है – "महाराज का शरीर लगभग पूर्ववत् है। खुजली रोग के लिए फिर से आयुर्वेदिक चिकित्सा आरम्भ हुई है। पूज्यपाद अध्यक्ष महाराज के साथ बहुत ही मामूली बातचीत, शरीर के हालचाल आदि का आदान-प्रदान हुआ है।"

सेवक के पास काशी में पड़नेवाले प्रचण्ड जाड़े के लिए उपयुक्त स्वेटर आदि नहीं था। महाराज तो प्राय: कुछ भी देख पाने में असमर्थ थे, फिर कौन देखेगा?

एक साधु ने कृपा करके एक भारी स्वेटर दिया। उन्होंने कहा – "मेरे पास दो स्वेटर हैं, तुम इसे ले लो।" किसी-किसी ने परामर्श दिया – "तुम योगेन महाराज के पास जाओ, वे तुम्हें एक कोट दे देंगे।" सेवक ने योगेन महाराज के पास कोट का आवेदन किया। वे विशेषत: बाहर नहीं निकलते थे, घर में ही रहते थे, उन्हें तपेदिक रोग हुआ था और उन दिनों तपेदिक की उतनी अच्छी दवा भी नहीं थी। काशी सेवाश्रम में ललित महाराज नामक संन्यासी थे, जिन्हें प्रेमेश महाराज 'काले शिव' कहकर पुकारते थे। योगेन महाराज इन्हीं 'काले शिव' महाराज के अग्रज थे।

योगेन महाराज सेवक को स्टोर में ले गए और वहाँ कई कोटों में से कोई एक चुनकर ले लेने को कहा। उन्होंने एक पसन्द करके दे दिया। रजिस्टर में सब कुछ लिख लेने के बाद उन्होंने कहा, "अप्रैल मास में इस कोट को वापस कर देना होगा।" सेवक बोला, "लौटा देने पर तो यह कोट सब कपड़ो में मिल जाएगा, मेरे द्वारा प्रयुक्त चीज का क्या कोई दूसरा उपयोग करेगा?" वे गम्भीर स्वभाव के थे, उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। बाद में एक अन्य साधु से यह बात समझ में आई कि वह कोट आगामी शीतकाल तक टिक जाएगा कि नहीं यह निश्चित नहीं है, इसके अतिरिक्त वापसी के समय बदला भी जा सकता है। इसीलिए आश्रम की सम्पत्ति आश्रम में रहेगी।

३१-०१-१९६४

दोपहर में एक व्यक्ति एक बड़ी डाहलिया फूल लेकर आए, जिसे उन्होंने लगाया है।

महाराज – वाह अच्छा है! बहुत बड़ा हो गया है। किन्तु ये सब विदेशी फूल हैं, इनमें गंध नहीं है। हमारे देसी फूलों में कैसी सुगंध है! जिस भी काम में लगाओ, ठाकुर के लिये है न! फूल किसके लिए, ठाकुर के लिये न? कोई-कोई अपने भोग के लिये फूल के पौधे उगाते हैं। कोई गाँव-मुहल्ले के लोगों के उपयोग के लिये, कोई ठाकुर के भोग के लिये। किन्तु जो अपने भोग के लिये है, वह अधम कोटि का है। हमलोग स्वामीजी के शिष्य हैं। ठाकुर की पूजा अच्छी है, किन्तु ठाकुर हजारों मुखों से हमारी ओर देख रहे हैं, उनमें से अति पीड़ित और गरीबों में वे अधिक हैं। इनकी सेवा ही प्रमुख कार्य है। फूल की वाटिका में कितना

शेष भाग पृष्ठ ५५६ पर

सकारात्मक दृष्टिकोण से अपने जीवन को निखारिये

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

दृष्टिकोण

एक प्रजावत्सल राजा थे। एक दिन उन्होंने सोचा कि यदि प्रजा का लगान कम कर दिया जाए, तो प्रजा पर भार कम पड़ेगा। परन्तु कर कम कर देने पर राज्य की आय कम हो जाएगी, जिससे कर्मचारियों को वेतन देना सम्भव न हो सकेगा। यदि किसी एक को प्रसन्न किया जाए, तो दूसरे पक्ष को कष्ट होगा। इसी सोच में राजा अशान्त हो रहे थे। राजा उपाय पर विचार करने लगे। उन्होंने सोचा कि कुरुक्षेत्र के युद्ध में भी अर्जुन के समक्ष यही समस्या थी कि यदि वह क्षत्रिय धर्म का पालन करता है, तो उसे अपने परिजनों का वध करना पड़ेगा और यदि परिजनों का वध न करे, तो क्षत्रिय धर्म का पालन नहीं होगा। ऐसे समय में श्रीभगवान ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था। क्यों न मैं भी उसी उपदेश को पढ़ूँ। राजा ने गीता को पढ़ना प्रारम्भ किया। तब उन्होंने सोचा कि भगवान श्रीकृष्ण ही सब द्वन्द्वों से मुक्त थे। यह सब सोचकर अन्त में उन्होंने पाया कि गीता और श्रीकृष्ण के जीवन से सीखने योग्य यदि कुछ है, तो वह है अनासक्ति। अत: उन्होंने अनासक्त गुरु की खोज प्रारम्भ की। पूरे नगर में घोषणा करवा दी गई कि एक अनासक्त व्यक्ति की खोज की जाए। उस व्यक्ति की परीक्षा ली जाए। यथासम्भव धन तथा सुन्दर स्त्री का प्रलोभन दिया जाए। इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के बाद ऐसे व्यक्ति की सूचना राजा को दी जाए। कुछ दिनों के अन्दर एक कर्मचारी ने राजा को यह सूचना दी कि एक वृक्ष के नीचे एक साधु मिला है और वह अनासक्त है। उसे किसी भी प्रकार के प्रलोभन से प्रभावित नहीं किया जा सका। राजा साधु के समक्ष उपस्थित हुए। राजा ने विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर साधु से विनती की कि उस पर कृपा करें, उसका द्वन्द्व दूर करें और बताएँ कि कर्म कैसे करें। साधु ने कहा – 'इसके लिए तो तुम्हें मुझे अपना गुरु बनाना पड़ेगा और अपना राजपाट छोड़ना पड़ेगा।' राजा तुरन्त तैयार हो गया। साधु ने कहा, 'राज्य को किसी अच्छे हाथों में सौंपना अच्छा होगा। अत: यह राज्य तुम मुझे ही सौंप दो।' राजा मान गया। साधु ने राजा से इसकी प्रतिज्ञा करवाई। तब गुरु ने प्रश्न किया, 'अब तो तुम्हारे पास कुछ भी नहीं रहा, तो तुम अपना जीवन पालन कैसे करोगे?' राजा ने कहा, 'जंगल के वृक्षों के फल खाकर और नगर में भिक्षा करके अपना जीवन निर्वाह करूँगा।' गुरु ने कहा, 'गृहस्थ को भिक्षा नहीं माँगनी चाहिए, इससे उत्तम तो यह होगा कि तुम एक नौकरी कर लो।' शिष्य सहमत हो गया। तब गुरु ने कहा, 'यदि तुम्हें नौकरी ही करनी हो, तो तुम मेरे राज्य में ही नौकरी कर लो।' शिष्य इसके लिए भी तैयार हो गया। तब गुरु ने कहा, 'तुम मेरे राज्य का संचालन करो। पर यदि तुम राजवस्त्र नहीं पहनोगे तो लोग तुम्हारी बात नहीं मानेंगे, इसलिए तुम्हें वैसे ही वस्त्र पहनने होंगे जैसा तुम राजा होने के समय पहना करते थे। मेरे राज्य में सुव्यवस्था होनी चाहिए, इसका तुम्हें ध्यान रखना होगा।' यह कहकर गुरु चले गए। पहले तो राजा बहुत से कार्य मंत्रियों पर ही छोड़ दिया करते थे। पर अब तो यह राज्य गुरु का था, इसलिए वह प्रत्येक कार्य स्वयं करने लगे। राजा तो पहले भी राजा ही थे। वर्तमान में भी उन्हें वही करना था। पर अब दृष्टिकोण बदल चुका था। वास्तव में कार्य तो वही होता है, पर दृष्टिकोण के परिवर्तन से उस कार्य को करने की पद्धति बदल जाती है। आइए, इस दृष्टिकोण से विचार-विमर्श करें।

दृष्टिकोण का अन्तर

दृष्टिकोण का अन्तर वैसा ही होता है, जैसे एक व्यक्ति पत्थर की मूर्ति में अपने आराध्य देवता को देखता है और दृष्टिकोण के अभाव में कोई मूर्ति में पत्थर ही देखता है। पंखा दीवार की एक ओर होता है तो हवा बाहर से अन्दर आती है और उसकी दिशा पलट देने पर अन्दर की हवा बाहर जाने लगती है। ऐसा ही अन्तर दृष्टिकोण से भी होता है। जब हम सकारात्मक होते हैं तो हमें सब कुछ सकारात्मक ही लगने लगता है। जब हम नकारात्मक होते हैं, तो सब कुछ नकारात्मक लगने लगता है। एक व्यक्ति निर्धन होकर भी शान्ति और सन्तोषजनक जीवनयापन करता है। वहीं दूसरी ओर एक धनी व्यक्ति के पास जगत की सारी सुख-सुविधाएँ होते हुए भी वह अशान्ति और असंतोष से व्याप्त रहता है। इस प्रकार हम यह देख सकते हैं कि व्यक्ति का सुख उसकी परिस्थितियों से कहीं अधिक उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। अधिकांश लोग अपनी परिस्थितियों और लोगों को बदलने का ही प्रयास करते हैं, जो पूर्णत: सम्भव नहीं हो पाता। वहीं हम अपना दृष्टिकोण बदलकर प्रसन्न रह सकते हैं।

दृष्टिकोण का महत्त्व

किसी व्यक्ति की सफलता उसकी योग्यता और कार्यक्षमता के साथ ही साथ उसके दृष्टिकोण पर भी निर्भर करती है। कभी-कभी योग्यता रखनेवाला व्यक्ति भी अपने अनुचित दृष्टिकोण के कारण गलत निर्णय ले बैठता है, जिससे वह असफल हो जाता है। बहुत छोटा-सा लगनेवाला यह दृष्टिकोण जीवन में बड़े-बड़े परिवर्तन करने में सक्षम होता है। दृष्टिकोण के कारण हमारे सफल होने की आशा बढ़ जाती है। कभी-कभी तो दृष्टिकोण असफलता में भी सफलता और दु:ख में सुख खोज लेता है।

एक आश्रम था। उसमें कई ब्रह्मचारी रहा करते थे। उन सभी को कुछ-न-कुछ कार्य सौंपा गया था। उनमें से एक ब्रह्मचारी को उसके कार्य-सम्पादन में बहुत कष्ट सहना पड़ रहा था। उसने एक बार सोचा कि वह आश्रम-प्रमुख से कहकर अपने कार्य में परिवर्तन करवा लेगा। परन्तु दूसरे ही क्षण उसने सोचा कि यदि वह स्थानान्तरित होता है, तो उसके स्थान पर किसी दूसरे ब्रह्मचारी को यह कष्ट सहना पड़ेगा। इससे तो अच्छा यही होगा कि वह अपने किसी ब्रह्मचारी-भाई को यह कष्ट न होने दे। अत: वह स्वयं उस कार्य को करता रहेगा। इस प्रकार कार्य करते-करते उसकी उस कार्य में दक्षता होने लगी तथा धीरे-धीरे उसके कष्टों का भी समाधान हो गया। अनुकूल परिस्थितियों को पाना एक साधारण बात है, पर प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल बना लेना दृष्टिकोण का कार्य है।

जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि

एक बार एक भरतनाट्यम् के नृत्यकार हमारे (रामकृष्ण मिशन भारत के) किसी आश्रम में आए हुए थे। वे श्रीरामकृष्ण देव के संदर्भ में कुछ नहीं जानते थे, पर उनकी दृष्टि उनके चित्र पर पड़ी। उन्होंने पूछा, 'ये निपुण नृत्यकार कौन हैं? इनकी मुद्रा अति उत्तम है।' हमारे एक संन्यासी ने उनके कहने का तात्पर्य पूछा और तब नृत्यकार ने कहा, 'हमारी नृत्य परम्परा के अनुसार, यह मुद्रा अनन्त को दर्शाती है।'[१] आश्चर्य का विषय यह है कि समाधि की अवस्था अनन्त का ही द्योतक है और भरतनाट्यम् के रचनाकार ने इसका सूक्ष्मता से निरीक्षण किया होगा अथवा यह विद्या भी उस स्तर तक पहुँची होगी। अनन्त की इस मुद्रा को देखकर एक नर्तक ने श्रीरामकृष्ण देव को नर्तक समझा। यदि उसे कोई समाधिमान् पुरुष देखता, तो वह उन्हें एक साधक या ईश्वर समझता। स्थिति एक जैसी होने पर भी हमारी दृष्टि के अनुसार हमारी सृष्टि होती है। हम अपने सामने वही देख पाते है, जिस रंग में हमारा मन रंगा होता है।

श्रीरामकृष्ण देव को पीला रंग देखकर पीताम्बर का स्मरण हो जाया करता था। पीताम्बर का स्मरण करके उन्हें श्रीकृष्ण का स्मरण होता और वे श्रीकृष्ण के भाव में समाधिस्थ हो जाया करते थे। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तुओं को वे ईश्वरीय भाव में देखा करते और मुहुर्मुहु: समाधिस्थ हुआ करते थे। वे सदा ईश्वरीय भाव में रहा करते थे इसलिए उनके कथोपकथन सदैव ईश्वरीय हुआ करते थे। इसी प्रकार हम जैसा सोचते हैं, हमारा संसार भी उसी प्रकार बन जाता है। यदि हम अपना

संसार अच्छा बनाना चाहें, तो हमें अच्छे दृष्टिकोण की आवश्यकता होगी।

दृष्टिकोण कैसा हो?

जिनका दृष्टिकोण ठीक नहीं होता, वे अच्छे व्यक्ति नहीं बन सकते। यदि हमारा दृष्टिकोण उचित न हो, तो हम उचित कार्य नहीं कर सकते। दृष्टिकोण के सकारात्मक होने पर हम प्रत्येक कार्य को श्रेष्ठ ढंग से कर सकते हैं।

हमारा दृष्टिकोण व्यावहारिक होना चाहिए। अति-आत्मविश्वासी होना या अहंकारी होना अच्छे दृष्टिकोण का द्योतक नहीं होता, बल्कि आत्मविश्वासी और विनम्र होना अच्छा दृष्टिकोण कहा जाएगा। यदि युद्ध से पूर्व शत्रु को दुर्बल समझकर कोई अति-आत्मविश्वासी हो, तो सम्भवत: उसके परास्त होने की सम्भावना बढ़ जाती है। यदि विद्यार्थी अति-आत्मविश्वासी होकर अभ्यास न करें, तो उनके परीक्षा परिणाम अच्छे नहीं होंगे, क्योंकि सफलता के लिए आत्मविश्वासी होना और अभ्यास करना; दोनों आवश्यक होते हैं।

अपनी क्षमता का अहंकार करने से व्यक्ति विवेक से अन्धा हो जाता है और अपने समक्ष आनेवाली सामान्य परिस्थितियों को भी भाँप नहीं पाता। वहीं स्वाभिमान के दृष्टिकोण से व्यक्ति अपना सम्मान रखते हुए दूसरों को भी सम्मान देता है। अपनी गलतियों को स्वीकारना और उसके लिए क्षमा माँगना कोई साधारण बात नहीं होती, श्रेष्ठ व्यक्ति ही ऐसा कर पाते हैं। किसी से सहायता प्राप्त करने के पश्चात् कृतज्ञ होना एक श्रेष्ठ दृष्टिकोण है। ऐसे दृष्टिकोणों से एक अच्छा व्यक्तित्व निखरकर सामने आता है।

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, ''हमें किसी से घृणा नहीं करनी चाहिए। यह संसार सदैव ही शुभ और अशुभ का मिश्रण स्वरूप रहेगा। हमारा कर्तव्य है कि हम दुर्बल के प्रति सहानुभूति रखें और एक अन्यायी के प्रति भी प्रेम रखें। यह संसार तो चरित्र-गठन के लिए एक विशाल नैतिक व्यायामशाला है।''[२]

दृष्टिकोण कैसे सुधारें?

जैसा दृष्टिकोण हम अपने छोटे-छोटे कार्य करने के समय रखते हैं, धीरे-धीरे वही अभ्यास हमारा संस्कार बन जाता है और धीरे-धीरे यही संस्कार पूरे जीवन का दृष्टिकोण बन जाता है। यदि अभ्यासवश हमारे कुछ संस्कार बने हैं, तो अभ्यास के द्वारा ही हम नए संस्कार भी बना सकते हैं। अत: जीवन में आनेवाली प्रत्येक परिस्थितियों में हम सकारात्मक दृष्टिकोण रखने का अभ्यास करें।

कहते हैं, 'जब जागे, तभी सवेरा'। यह कथन पूर्णत: सत्य है। जब भी हमें जीवन में कोई श्रेष्ठ दृष्टिकोण मिले, तो अविलम्ब उसका अनुसरण करना प्रारम्भ कर देना चाहिए। इससे पूर्व हमने जो भी भूलें की हैं, उसके विषय में बार-बार न सोचते हुए, भविष्य में वह भूल न करें और अपने नव जीवन का प्रारम्भ करें।

समस्याओं के विषय में सोचने पर चिन्ता बढ़ती है, परन्तु समाधान के विषय में सोचने पर मार्ग दिखाई देते हैं। अत: हमें जीवन में आनेवाली समस्याओं के विषय में न सोचकर, समस्याओं के समाधान के विषय में सोचना चाहिए।

क्रोध हमारे विवेक में बाधा उत्पन्न करता है। इससे पूर्व की हम कोई दृष्टिकोण बनायें, क्रोध पहले ही अनुचित निर्णय ले लेता है। अत: क्रोध में अपने निर्णय न लें, ऐसे समय में प्रतीक्षा करें। जिस प्रकार स्थिर जल के नीचे की सतह को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, उसी प्रकार शान्त मन में भी अच्छे दृष्टिकोण की कल्पना की जा सकती है।

एक ही ढर्रे पर चलते-चलते अधिकांश लोग उत्साही नहीं रह पाते। तनाव और समस्यायें उन्हें नकारात्मक बनाती हैं। ऐसे समय में प्रशिक्षण प्राप्त करने से दृष्टिकोण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रशिक्षण से हमारे कार्य में दक्षता आती है, उत्साह बढ़ता है, सकारात्मकता आती है और हम कुछ नया करने की सोचने लगते हैं।

प्रार्थना के माध्यम से हम अपने भीतर उदार हृदय का दृष्टिकोण उत्पन्न कर सकते हैं। प्रार्थना हमारे मन को पवित्र करती है, हमें सकारात्मक विचार देती है और हमारे भीतर

की शक्ति को जगाती है। जिस व्यक्ति के मन में सर्वमंगल की भावना हो, ऐसे व्यक्ति का दृष्टिकोण सदैव उत्तम ही रहेगा।

महापुरुषों और वीरों के जीवन तथा उनके उपदेशों का चिन्तन करके हम अपने दृष्टिकोण को सुधार सकते हैं। जीवन में ऐसे बहुत से क्षण होते हैं, जहाँ हमें अनुभव की आवश्यकता होती है। तब इन महापुरुषों के दिखाए हुए पथ पर चलकर हम अपना जीवन सफल कर सकते हैं।

दृष्टिकोण हमारे व्यक्तित्व की पहचान

इस संदर्भ में रामायण के पात्र अनुपम उदाहरण सिद्ध होते हैं। श्रीराम को वनवास दिया जाता है और वे माता कौशल्या के समक्ष आशीर्वाद के लिए उपस्थित होकर उनसे कहते हैं –

पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू।
जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू।।[३]

अर्थात् 'पिताजी ने मुझको वन का राज्य दिया है, जहाँ सब प्रकार से मेरा बड़ा काम बननेवाला है।' यहाँ उनके दृष्टिकोण से यह पता चलता है कि वे नगर के राज्य के स्थान पर वन के राज्य में जा रहे हैं। उनसे राज्य नहीं छीना गया है, बल्कि दूसरा राज्य दिया गया है। इसके अतिरिक्त वहाँ जाकर उनका काम बननेवाला है। माता कौशल्या भी श्रीराम को आशीर्वाद देते हुए कहती हैं, 'मैं बलिहारी जाती हूँ, तुमने अच्छा किया। पिता की आज्ञा का पालन करना ही सब धर्मों का शिरोमणि धर्म है।' जब यह समाचार जनकनन्दिनी सीताजी को मिलता है, तो वे भी वन को जाना चाहती हैं। तब कौशल्याजी के विचारानुसार श्रीराम उन्हें अयोध्या में रहने का उपदेश देते हैं और कहते हैं कि वन में बहुत कष्ट होगा। सीताजी विनम्रता से कहती हैं कि एक धर्मपत्नी का धर्म अपने पति की सेवा करना होता है। जिनके पति तपस्या में जाएँ, उनकी अर्धांगिनी को भोग नहीं करना चाहिए। अर्थात् उन्हें भी वन जाने की अनुमति दी जाए। यह समाचार सुनकर लक्ष्मण अपने भ्रातृप्रेमवश अपने ज्येष्ठ भ्राता के साथ वन जाना चाहते हैं। वहीं मंथरा अपने षड्यंत्र को सफल होता देखकर आनन्दित होती है। इस प्रकार प्रत्येक स्थिति में हमारे व्यक्तित्व के अनुसार ही हमारा दृष्टिकोण दिखाई देता है। एक अच्छे व्यक्ति का दृष्टिकोण अच्छा होता है और बुरे व्यक्ति का दृष्टिकोण बुरा होता है। हमारे प्रत्येक कार्यों में दृश्य अथवा अदृश्य रूप से हमारा दृष्टिकोण सामने आ ही जाता है और उस दृष्टिकोण के अनुसार हमारे व्यक्तित्व की पहचान हो जाती है।

दृष्टिकोण से दृष्टिकोण का परिवर्तन

कई बार ऐसा होता है कि हमारे प्रति किसी व्यक्ति ने पूर्व से ही कोई दृष्टिकोण निर्धारित कर लिया है, परन्तु यदि हमारा दृष्टिकोण अच्छा रहे, तो उसके प्रभाव से हमारे समक्ष आनेवाले व्यक्ति के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हो जाता है। अत: यदि परिस्थितियाँ विषम हों, तो भी हमें धैर्य रखते हुए सकारात्मक दृष्टिकोण रखना चाहिए।

किसी परिवार में विवाहोत्सव चल रहा था। वर के मित्रों ने वर को बहुत समझाया था कि पत्नी को सदा नीचे स्थान देकर रखना। एक बार यदि तुम हार गए, तो सारा जीवन तुम्हें हार माननी पड़ेगी, इसलिए हमेशा उस पर हावी रहना आदि आदि। वधू पहली बार ससुराल आई थी। उस समय कुछ प्रथाएँ होती हैं। उनमें से एक यह था कि किसी बड़े पात्र में गहरा तरल रंग रख दिया जाता है। वर की बहन एक अँगूठी हाथ में लेकर उसे घुमाते हुए उस पात्र के अन्दर छोड़ देती है। चूँकि रंग बहुत गहरा होता है, उसे बाहर से देख पाना असम्भव होता है, अत: वर और वधू दोनों को हाथ डुबाकर उस अँगूठी को बाहर निकालना होता है। पहली बार अँगूठी वर को मिलती है और वह बहुत प्रसन्न होता है। दूसरी और तीसरी बार अँगूठी वधू को मिलती है, पर वह पानी के अन्दर ही अन्दर अँगूठी वर के हाथों में दे देती है। बाहर से देखनेवाले कुछ समझ नहीं पाते। पर वर को बड़ा आश्चर्य होता है कि उसने वह अँगूठी स्वयं बाहर न निकालकर मुझे क्यों दी। जब वर और वधू एकान्त में मिलते हैं, तब वर ने वधू से पूछा, 'जब अँगूठी तुम्हें पहले मिली थी, तो तुमने वह अँगूठी स्वयं बाहर क्यों नहीं निकाली? मेरे हाथ में क्यों दे दी?' तब वधू कहती है, 'आपकी जीत में ही तो मेरी जीत है।' वधू के दृष्टिकोण ने वर के अन्तर्मन को छू लिया और वह समझ गया कि वह एक आदर्श गृहिणी है। उसे उससे परामर्श करके ही अपना गृहस्थ जीवन चलाना चाहिए।

दृष्टिकोण एक मार्गदर्शक

एक व्यक्ति ठोकर खाकर बैठ जाता है और कहता है कि उसके साथ बहुत बुरा हुआ। वहीं दूसरा व्यक्ति यह कहता है कि ठोकर लगने से अब वह सावधान हो गया है, अच्छा हुआ की वह खाई में नहीं गिरा। जीवन के क्षेत्र में भी कुछ ऐसा ही होता है। एक व्यक्ति धोखा खाकर निराशा में डूब जाता है और दूसरा अपने दृष्टिकोण के कारण भविष्य के लिए सावधान हो जाता है। कहते हैं 'एक दरवाजा बन्द होता है, तो हजार दरवाजे खुलते हैं'। परन्तु दृष्टिकोण ही वह आँख है, जो उन हजार दरवाजों को देख सकता है। दृष्टिकोण हमारे सोचने और देखने का ढंग बदलता है। दृष्टिकोण हमें हमारे हर सम्भव विकल्पों के विषय में सोचने की क्षमता प्रदान करता है, हमें मार्ग दिखाता है।

एक छात्र कक्षा में मन्दबुद्धि था। एक बार सभी शिक्षक आपस में बातें कर रहे थे। तभी उस छात्र के विषय में उन लोगों ने यह मत व्यक्त किया कि उसके द्वारा कुछ नहीं होगा। तब उनमें से एक शिक्षक सोचने लगा कि अपनी योग्यता को परखने का यही अच्छा अवसर है। जो विद्यार्थी बुद्धिमान हैं, वे तो अच्छा प्रदर्शन करेंगे ही, पर जिन विद्यार्थियों का प्रदर्शन अच्छा न हो, ऐसे विद्यार्थियों को श्रेष्ठ बनाने का कार्य शिक्षक का दायित्व है। वह शिक्षक उस छात्र पर विशेष ध्यान देने लगा। शिक्षक के प्रयासों को देखकर छात्र के मन में भी कुछ करने का उत्साह आने लगा और धीरे-धीरे वह छात्र अच्छा प्रदर्शन करने लगा। तत्पश्चात् वह श्रेष्ठ विद्यार्थियों में से एक बन गया। वास्तव में उचित दृष्टिकोण के अभाव में हम अवसरों को खो देते हैं। सकारात्मक दृष्टिकोण होने पर हम अवसरों को खोज लेते हैं या बना लेते हैं। इस प्रकार नए मार्ग को खोज सकने के कारण दृष्टिकोण एक मार्गदर्शक की भाँति कार्य करता है।

उपसंहार

जिस प्रकार चाबी के एक ओर घुमाने से ताला खुल जाता है और दूसरी और घुमाने पर बन्द हो जाता है। उसी प्रकार हमारा दृष्टिकोण हमारी प्रगति के मार्ग खोल सकता है और बन्द भी कर सकता है, अत: हमें अपने दृष्टिकोण के प्रति सजग होना चाहिए। जिस प्रकार पक्षी उड़ने से पूर्व अपने पंख फैलाते हैं, तो हम समझ जाते हैं कि अब वह उड़ान की तैयारी में है। उसी प्रकार दृष्टिकोण हमारे जीवन के उड़ान की पहली पहचान है। हमारा दृष्टिकोण निश्चित करता है कि हम कितना ऊँचा और कितनी दूर उड़ेंगे। यदि जीवन को उत्साहपूर्वक जीते हुए सफलता प्राप्त करनी हो, तो हमें अपने जीवन का व्याकरण तो बदलना ही होगा अर्थात् हमें अपना दृष्टिकोण बदलना होगा, उसे सकारात्मक करना होगा। ○○○

सन्दर्भ सूची : १. How to live with God (द्वारा स्वामी चेतनानन्द)/४४४, **२.** विवेकानन्द साहित्य ३/५४, **३.** अयोध्याकाण्ड ५२/६.

पृष्ठ ५५१ का शेष भाग

खर्च, कितनी बाल्टियाँ-गमले, कितने लोगों की खुशामद विविध पुण्यों की वाटिका बनाने में रजोगुण का कार्य रहता है – ''रजो रागात्मकं विद्धि।'' रजोगुण से आसक्ति आती है। कई बार कार्य की अधिकता प्रबल हो जाती है, कार्य के बीच में जप-ध्यान, पूजा-पाठ त्याग कर केवल कार्य में मतवाला होना पड़ता है।

ट्रेनिंग सेन्टर (ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र) का प्रसंग उठा। महाराज ने कहा, ''यदि स्वामीजी के चारों योगों का भाव ट्रेनिंग सेन्टर में प्रविष्ट हो जाए, तो ग्रहणशील प्रकृति के नवयुवक आएँगे। समय आने पर परिणाम अच्छा होगा।''

एक साधु विश्वनाथजी का दर्शन करके आए हैं। महाराज उनसे कहते हैं – ''विश्वनाथजी के दर्शन में धन खर्च होता है, किन्तु रास्ते के दोनों ओर जो सजीव विश्वनाथ करुण-क्रन्दन करके विलाप कर रहे हैं, उन्हें क्या हम देखते हैं? पूजा-माला गृहस्थ का धर्म है। संन्यासी का धर्म है – सभी प्राणियों की शिव-भाव से सेवा करना।''

३१-०२-१९६४

कल एक आश्रम में सन्ध्या-आरती ८ बजे हुई, क्योंकि पुरस्कार वितरण चल रहा था।

महाराज – जहाँ ठाकुर रहेंगे, वहाँ उनको उच्च प्राथमिकता (Top Priority) देनी होगी, अन्य सब कुछ बाद में। सभा या कुछ कार्य के लिये उनकी नियमित सेवा-पूजा भंग होगी! सभा अन्य स्थान पर करो। ढाका में नाट्य मन्दिर में प्रदर्शनी लगती थी, मैंने जाकर उसे बन्द कर दिया। मेरे ठाकुर वहाँ रहेंगे और उनके सामने संसार भर के लोग धूल उड़ाते जाएँगे? **(क्रमशः)**

साधुओं के पावन प्रसंग (२४)

स्वामी भूतेशानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

मैं – बौद्धों का विपश्यना ध्यान क्या है?

महाराज – **'सर्वं क्षणिकं दुःखं त्याज्यम्।'** दुखनिवृत्ति का उपाय है आर्यसत्य का पालन। Zen Buddhist कहते है constant alertness (निरन्तर सजगता). तुम जो कार्य या चिन्तन करो, उसे सदैव सजग मनोभाव से करना। Mindfulness – जो करना सम्पूर्ण मन-प्राण से करना, आंशिक मन से नहीं करना। जो भी करना उसे सर्वान्त:करण से करना, इससे विक्षेप नहीं आयेगा। उस समय सत्य प्रतिभासित होगा। बौद्धों का लक्ष्य हुआ शून्यम् – Void. माध्यमिकों के जैसा शून्य Void नहीं है, विक्षेप का अभाव या alertness of truth है। एक व्यक्ति दो वर्षों से बर्तन धो रहा है। उस समय उसके मन में यह विचार आया – बर्तन धोते समय मैं कुछ और भी तो चिन्तन कर सकता हूँ। इस बात को गुरु से बताने पर गुरु ने समझाया, 'पूर्ण मन देकर बर्तन धोने से तुम सम्पूर्ण विश्व के रहस्य को जान पाओगे।' स्वामीजी ने कर्मयोग में कहा है – यदि हम सम्पूर्ण मन देकर कर्म कर सकें, तो हमारे मन की समस्त चंचलता दूर हो जायेगी। चंचलता दूर होने से, उसके पीछे जो सत्ता है, अर्थात् आत्मा है, वह प्रकाशित होती है।

स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज

मैं – गीता के कर्मयोग तथा स्वामीजी के कर्मयोग में क्या कोई भेद है?

महाराज – गीता के 'फलार्पण' और स्वामीजी के 'फलाकांक्षा का त्याग' दोनों एक ही है। एक ही सत्य सकारात्मक और नकारात्मक रूप में है। गीता में है – समस्त कर्मों का फल ईश्वर को अर्पित करना होगा। स्वामीजी के कर्मयोग में है – स्वार्थशून्य होकर कर्म करना होगा। स्वार्थपरता त्यागना होगा। फलांकाक्षारहित होकर कर्म करो। कर्म मन में विक्षेप लाता है, क्योंकि हम कर्मफल के लिए इधर-उधर भाग-दौड़ कर रहे हैं। स्वामीजी और भगवान बुद्ध के कर्मयोग में बहुत समानता है। बन्धन से मुक्ति-प्राप्ति के लिए समग्र मन देकर कर्म करना चाहिए। इससे मन का विक्षेप चला जायेगा और सत्य प्रकाशित होगा। सत्य का प्रकाश स्वत:सिद्ध है। आवरण को हटाना ही है आध्यात्मिक जीवन। किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं है। यही कर्मयोग का उद्देश्य है।

शंकराचार्य के मतानुसार कर्मयोग के द्वारा चित्तशुद्धि – तत्पश्चात् ज्ञान। किन्तु उन्होंने इन दोनों के मध्य में उपासनायोग का निर्देश किया है। इसकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि ब्रह्म स्वयं प्रकाशित है। कोई ब्रह्म को प्रकाशित नहीं कर सकता। निष्काम कर्म के द्वारा केवल विघ्नों को हटाने से ही सब कार्य हो जायेगा। शंकराचार्य के मतानुसार अज्ञान केवल ज्ञान के द्वारा ही निवृत्त किया जा सकता है। यद्यपि मध्य में उन्होंने ब्रह्माकार-वृत्ति का योग कर दिया; यह वृत्ति अज्ञान-वृत्ति को हटा देगा। स्वामीजी ने कहा है कि अज्ञान-वृत्ति के हट जाने से फिर क्या रह जायेगा? ब्रह्म तो स्वयं प्रकाशमान है।

प्रात: साढ़े दस बजे महाराज के पास जाने के पूर्व, सेवक महाराज ने मुझसे कहा कि मैं ही अधिक-से-अधिक बातें करूँ, जिससे महाराज को अधिक बातें बोलने का अवसर न मिल सके। मैंने महाराज को आनन्दित करने के लिए कई कहानियाँ सुनायीं। एक संन्यासिनी कॉन्वेन्ट के ऊपर

बहुत आरोप लगाती थी। इसलिए Mother Superior ने उन संन्यासिनी से कहा कि, "तुम दस वर्षों में केवल दो शब्दों का व्यवहार कर सकती हो।" पहले दस वर्षों के पश्चात् संन्यासिनी ने कहा, "Food bad." (भोजन खराब है।) दूसरे दस वर्षों के उपरान्त संन्यासिनी ने कहा "Very tired." (बहुत थक गई।) और तीसरे दस वर्षों के पश्चात् अर्थात् तीस वर्षों के बाद कहा, "I quit." (मैं जा रही हूँ।)

महाराज हँसने लगे और कहा, "बहुत लोग चले जाते हैं। क्योंकि अधिक नियम पसन्द नहीं करते हैं।"

मैंने God Lived with Them पुस्तक से शरत् महाराज की जीवनी के अन्तिम भाग में से पढ़कर सुनाया। वह प्रवाजिका भारतीप्राणा की स्मृतिकथा थी। यह मुझे स्वामी अशेषानन्द जी महाराज के कमरे के एक दराज में मिला था। शरत् महाराज ने ठाकुर से सर्वभूतों में ब्रह्मदर्शन के लिए प्रार्थना किया था। इस पर ठाकुर ने कहा था, "तुमको दर्शन होगा।"

प्रवाजिका भारतीप्राणा की स्मृतिकथा : "एक बार कई भक्तों ने स्वामी सारदानन्द जी से जानना चाहा, 'महाराज, आप हमलोगों से इतना प्रेम क्यों करते हैं? सावधान रहिए, ऐसा न हो कि अन्त में आप जड़भरत के जैसे हो जायँ!' स्वामी सारदानन्द जी ने कोई भी उत्तर नहीं दिया। कई दिनों के उपरान्त, उस भक्त के उद्बोधन आने पर महाराज ने कहा, 'उस दिन बेलूड़ मठ में ठाकुर को प्रणाम किया। ठाकुर ने दर्शन देकर मुझसे कहा – तुम सबको प्रेम करते हो, क्योंकि तुम सबके भीतर मुझे देखते हो। उस दिन तुमने जो प्रश्न किया था, यह है उसका उत्तर।' "

तदुपरान्त मैंने देखा कि महाराज की आँखें छलछला आयीं और जोर से निश्वास लेते हुए महाराज ने गीता का एक श्लोक कहा –

"यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।"

(गीता ६/३०)

अर्थात् जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में सबके आत्मरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है, उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता।

०८/०८/१९९७ बेलूड़ मठ, प्रातः ७ बजे

मैं – आध्यात्मिक अनुभूति सत्य है या असत्य, यह कैसे ज्ञात करें?

महाराज – दो उपाय हैं। पहला, स्वसंवेद्य अर्थात् जिसको अनुभूति हुई है, वह जानता है। दूसरा, परसंवेद्य अर्थात् अन्य कोई देखता है। सत्य अनुभूति के विषय में गीता के द्वितीय अध्याय में स्थितप्रज्ञ के लक्षण में कहा गया है। उन लक्षणों से अपनी अनुभूति को मिलाने से तुम यह जान पाओगे कि यह सत्य है या असत्य। वे सब स्पष्ट लक्षण हैं। इसी प्रकार, श्रीमद्भागवत में तीन प्रकार के लक्षण कहे गये हैं : (१) ईश्वर पर तुम्हारी भक्ति बढ़ेगी।, (२) तुम्हारा मन इन्द्रियों के विषयों से मुक्त होगा, और (३) सत्य के सम्बन्ध में तुम्हारी दृढ़-निष्ठा होगी और इस विषय में कोई द्विधा या संशय नहीं रहेगा।

भक्तिः परेशानुभवो विरक्ति-
रन्यत्र चैष त्रिक एककालः।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्यु-
स्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम्।।

(भागवत ११/२/४२)

– क्षुधार्त व्यक्ति के मन में शान्ति नहीं रहती। वह शारीरिक दुर्बलता का अनुभव करता है। तदुपरान्त जब उसे भोजन करने के लिए दिया जाता है, तब प्रत्येक ग्रास के साथ वह सन्तुष्टि का अनुभव करता है, शरीर में शक्ति प्राप्त करता है, उसके मन में शान्ति आती है और क्षुधा-यन्त्रणा मिटती जाती है। इन तीनों लक्षणों से सत्य अनुभूति को निर्धारित किया जा सकता है। यदि सत्य-दर्शन से वह अपने अन्दर सन्तुष्टि का अनुभव करता है, आध्यात्मिक शक्ति का अनुभव करता है और भगवद्-विषय में उसका सम्पूर्ण संशय नष्ट हो जाता है, तब वह समझ पाता है कि उसका दर्शन तथा पूर्व की अनुभूति सत्य है। परसंवेद्य में दर्शन का मूल्यांकन दूसरे व्यक्ति द्वारा किया जाता है; किन्तु इसमें संशय की सम्भावना रह सकती है। कोई मनुष्य आध्यात्मिक अनुभूति तथा दर्शनों का नाटक या अनुकरण करके दिखा सकता है। वह दूसरों को धोखा दे सकता है, किन्तु वह स्वयं यह जानता है कि यह सत्य नहीं है। गीता के द्वितीय अध्याय में स्थितप्रज्ञलक्षण और तेरहवें अध्याय में अहिंसा, क्षान्ति, आर्जवम् जैसे गुण उसके सटीक लक्षण हैं।

मैं – आजकल पाश्चात्य में कई लोगों के मुँह से सुनता हूँ कि उनको अनुभूति और कुण्डलिनी जागृत हुई है। आप क्या कहते हैं?

महाराज – बहुत कम लोग ही समझते हैं कि कुण्डलिनी क्या है? वासना के जागृत होने को कुण्डलिनी जागृत होना समझ लेते हैं। श्रीरामकृष्ण-वचनामृत को पढ़कर लोग यह समझने लगते हैं कि उनकी भी कुण्डलिनी जागृत हुई है। एक व्यक्ति ने मुझे इसी प्रकार बताया था। मैंने कहा था, तुम डॉक्टर को दिखाओ। तुमको High blood pressure (उच्च रक्तचाप) हो सकता है।

मैं – ईश्वर का आदेश कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

महाराज – इसे तीन दृष्टिकोण से देखना होगा – (१) स्वयं के अनुभव से, (२) स्वयं के अनुभव को शास्त्र से मिलाकर, और (३) संशय का नाश। ईश्वर आदेश सत्य है कि नहीं इस प्रकार इसकी जाँच करनी होगी। कई बार वासना जागृत होती है, मन कहता है कि यह ईश्वर की इच्छा है।

०९/०८/१९९७, बेलूड़ मठ, प्रातः ७ बजे

मैं – St. John of the Cross (सेंट जॉन) ने Dark night of the Soul (आत्मा की घोर तमोनिशा) के विषय में कहा हैं। कई साधक आध्यात्मिक जीवन में शुष्क-काल का अनुभव करते हैं। इससे कैसे निस्तार पाया जाय?

महाराज – सभी साधक के जीवन में कभी-न-कभी इस प्रकार का शुष्क-भाव आता है। अध्यवसाय का अभाव होने से ही आध्यात्मिक जीवन में शुष्क-भाव आता है। साधक हतोत्साहित हो जाता है। पकड़े रखना होता है। कभी भी साधन-भजन नहीं छोड़ना चाहिए। वह भाव कितने समय तक रहेगा? मन पुनः ऊपर उठेगा। ईश्वरकृपा से depression (अवसाद) चला जायेगा। कृपा की बहुत आवश्यकता है, नहीं तो स्वयं के अध्यवसाय से सब कुछ नहीं होता। आरम्भ में आत्मप्रयास बहुत आवश्यक है। अन्त में केवल ईश्वर की कृपा पर ही निर्भर है।

'अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुंजादिवेषीकां धैर्येण
तं विद्याच्छुक्रममृतं विद्याच्छुक्रममृतमिति।।'

(कठोपनिषद् २/३/१७)

अर्थात् "अंगुष्ठमात्र परिमाणवाला परम पुरुष सबका अन्तर्यामी सदैव मनुष्यों के हृदय में भलीभाँति प्रविष्ट है, उसको मूँज से सींक की भाँति अपने शरीर से धीरतापूर्वक पृथक् देखे, उसी को विशुद्ध अमृतस्वरूप समझे, उसी को विशुद्ध अमृतस्वरूप समझे।" ठाकुर ने हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द जी) से कहा था, 'अरे, कुश-लव, किस बात पर गर्व कर रहे हो, मैं यदि पकड़ा नहीं जाता, तो क्या तुमलोग पकड़ पाते।'

मैं – क्या करने से हम लोग ठाकुर को प्रेम कर पायेंगे, इस रहस्य को हम सभी को बताइये।

महाराज – Love generates love. (प्रेम, प्रेम को उत्पन्न करता है।) भागवत में है – 'भक्त्या संजायते भक्तिः'। यह अतिथियों के लिए है। अन्त में, तुमको सम्पूर्णरूप से ईश्वर को आत्मसमर्पण करना होगा। प्रारम्भ में, अहंकार का होना अच्छा है – पक्षी के जैसा जब तक पंख थक न जाये। जब पूर्णतः थक जाओ, तब जहाज के मस्तूल पर आकर बैठो। यह हुआ ठाकुर का उपदेश।

मैं – एक दिन वार्तालाप करते समय Thomas Merton's International Society की एक कैथॉलिक लड़की से मैंने कहा – 'सुनो, तुम्हारे धर्म में हमारे धर्म की तरह गुरु-इष्ट-मन्त्र नहीं है।' वह Contemplative Outreach के President Father Thomas Keating को जाकर मेरी इस बात को बतायी। उन्होंने लड़की से कहा, हमारी साधना का उपदेश Mathew 6.6 में है : 'When you pray, go to your room, close the door, and pray to your Father, who is unseen. And your Father who sees what you do in private, will reward you openly.' "(अर्थात् जब तुम प्रार्थना करो, तब अपने कमरे में जाकर द्वार बन्द कर लो और अपने परमपिता से प्रार्थना करो, जो दिखाई नहीं दे रहे हैं। तथा तुम्हारे परमपिता, जो यह देखते हैं कि तुम एकान्त में क्या कर रहे हो, तुम्हें इसका फल सबके सामने देंगे।)" ईसाई लोग प्रार्थना पर बल देते हैं और हम लोग जप-ध्यान करने के लिए कहते हैं, यह भिन्नता क्यों है?

महाराज – जब तुम जप करते हो, तब केवल यन्त्रवत् भगवान के नाम का उच्चारण ही न करो, अपितु तुम्हारे

शेष भाग पृष्ठ ५७२ पर

भगवान के विभिन्न नाम क्यों?

अरुण चूड़ीवाल, कोलकाता

शान्ति-पर्व के ४६वें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण हस्तिनापुर के सम्राट युधिष्ठिर से कहते हैं, ''पार्थ! जब पुरुषसिंह भीष्म अपने कर्मों के अनुसार स्वर्गलोक में चले जायेंगे, उस समय यह पृथ्वी अमावस्या की रात्रि के समान श्रीहीन हो जायेगी। अत: महाराज युधिष्ठिर! आप भयानक पराक्रमी गंगानन्दन भीष्म के पास चल कर उनके चरणों में प्रणाम कीजिए और आपके मन में जो संदेह हो, उसे पूछिए। पृथ्वीनाथ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – इन चारों विद्याओं को, होता, उद्गाता, ब्रह्मा से सम्बन्ध रखनेवाले यज्ञादि कर्मों को, चारों आश्रमों के धर्मों को तथा सम्पूर्ण राजधर्मों को उनसे पूछिये।''

वासुदेव के निर्देश के अनुसार महाराज युधिष्ठिर शर-शैय्याशायी पितामह के पास जाकर मनुष्य-व्यवहार सम्बन्धी अनेक प्रश्न पूछते हैं। सम्पूर्ण शान्ति-पर्व और उसके पश्चात् अनुशासन-पर्व राजा युधिष्ठिर के प्रश्नों और उत्तरों से समाहित है। प्रश्नोत्तर की शृंखला में पितामह एक कथा का उल्लेख करते हैं कि किस प्रकार महर्षि वेद-व्यास अपने शिष्यों को श्रीकृष्ण के नामों की व्युत्पत्ति समझाते हैं। महर्षि व्यास इस सन्दर्भ में देवकीनन्दन एवं अर्जुन के बीच हुए संवाद का वर्णन करते हैं। शान्ति-पर्व के ३४१वें अध्याय में भगवान स्वयं अपने नामों की व्याख्या करते हैं। वे कहते हैं –

आपो नारा इति प्रोक्ता आपौ वै नरसूनवः।
अयनं मम तत् पूर्वमतो नारायणो ह्यहम्।।

– नर से उत्पन्न होने के कारण जल को 'नार' कहा गया है। वह नार पहले मेरा अयन था, इसलिए मैं 'नारायण' कहलाता हूँ।

छादयामि जगद्विश्वं भूत्वा सूर्य इवांशुभिः।
सर्वभूताधिवासश्च वासुदेवस्ततो ह्यहम्।।

– मैं ही सूर्य-रूप धारण करके अपनी किरणों से सम्पूर्ण जगत को व्याप्त करता हूँ तथा मैं ही प्राणियों का वास-स्थान हूँ, इसलिए मेरा नाम 'वासुदेव' है।

अधिभूतानि चान्तेषु तदिच्छंश्चास्मि भारत।
क्रमणाच्चाप्यहं पार्थ विष्णुरित्यभिसंज्ञितः।।

– मैं सबका अतिक्रमण करके स्थित हूँ, अत: मेरा नाम 'विष्णु' है।

मनुष्य दम (इंद्रिय-संयम) के द्वारा सिद्धि पाने की इच्छा करते हुए मुझे पाना चाहते हैं तथा दम के द्वारा ही वे पृथ्वी, स्वर्ग एवं मध्यवर्ती लोकों में ऊँची स्थिति पाने की अभिलाषा करते हैं, इसलिए मैं 'दामोदर' कहलाता हूँ।

अन्न, वेद, जल और अमृत को पृश्नि कहते हैं। ये सदा मेरे गर्भ में रहते हैं, इसलिए मेरा नाम 'पृश्निगर्भ' है।

सूर्यस्तपतो लोकाग्नेः सोमस्य चाप्युत।
अंशवो यत् प्रकाशन्ते ममैते केश संज्ञिताः।।
सर्वज्ञाः केशवं तस्मान्मामाहुर्द्विजसत्तमाः।।

– जगत को तपानेवाले सूर्य की तथा अग्नि और चन्द्रमा की जो किरणें प्रकाशित होती हैं, वे सब मेरा केश कहलाती हैं। उस केश से युक्त होने के कारण मैं 'केशव' हूँ।

जगत को मोद और ताप प्रदान करने के कारण चन्द्रमा और सूर्य हर्षदायक होते हैं। पाण्डुनन्दन ! अग्नि और सोम के द्वारा किये गये इन कर्मों द्वारा मैं विश्वभावन वरदायक ईश्वर ही 'हृषीकेश' कहलाता हूँ।

यज्ञ में आवाहन करने पर मैं अपना भाग हरण (स्वीकार) करता हूँ तथा मेरे शरीर का रंग भी हरित है, इसलिए मुझे 'हरि' कहते हैं।

प्राणियों के सार का नाम है धाम और ऋत का अर्थ है – सत्य, इसलिए मेरा नाम 'ऋतधामा' है।

नष्टां च धरणीं पूर्वमविन्दं वै गुहागताम्।
गोविन्द इति तेनाहं देवैर्वाग्भिरभिष्टुतः।।

– पूर्वकाल में नष्ट होकर रसातल में गई हुई पृथ्वी को मैंने वराह-रूप धारण करके पुन: प्राप्त किया था, इसलिए देवताओं ने अपनी वाणी द्वारा 'गोविन्द' कहकर मेरी स्तुति की।

रोमहीन प्राणी को शिपि कहते हैं तथा विष्ट का अर्थ है व्यापक। मैंने निराकार रूप से समस्त जगत को व्याप्त कर रखा है, इसलिए मुझे 'शिपिविष्ट' कहते हैं।

मैंने न तो पहले कभी जन्म लिया, न जन्म लेता हूँ और न कभी आगे जन्म लूँगा। इसलिए मेरा नाम 'अज' है।

ऋता ब्रह्मसुता सा मे सत्या देवी सरस्वती।।
सच्चासच्चैव कौन्तेय मयाऽऽवेशितमात्मनि।
पौष्करे ब्रह्मसदने सत्यं मामृषयो विदुः।।

सत्यस्वरूपा ब्रह्मपुत्री सरस्वती मेरी वाणी है, सत् और असत् को भी मैंने अपने भीतर प्रविष्ट कर रखा है, इसलिए मुझे 'सत्य' कहते हैं।

सत्त्व को मुझसे ही उत्पन्न हुआ समझो। मेरा वह पुरातन सत्त्व इस अवतार काल में भी विद्यमान है। सत्त्व के कारण ही मैं पापरहित हो निष्काम कर्म में लगा रहता हूँ, अत: मुझे 'सात्त्वत' कहते हैं।

कृषामि मेदिनीं पार्थ भूत्वा कार्ष्णायसो महान्।
कृष्णो वर्णश्च मे यस्मात् तस्मात् कृष्णोऽहमर्जुन।।

– मैं काले लोहे का विशाल फाल बनाकर इस पृथ्वी को जोतता हूँ। मेरे शरीर का रंग भी काला है, इसलिए मैं 'कृष्ण' कहलाता हूँ।

मैंने भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश के तेज को संयुक्त किया है। इन पाँचों को मिलाने में जिनकी शक्ति कभी कुंठित नहीं होती, अत: मैं 'वैकुण्ठ' कहलाता हूँ।

मैं कभी च्युत नहीं हुआ हूँ, अत: 'अच्युत' कहलाता हूँ।

'अ' का अर्थ है – लय-स्थान, 'धोक्ष' का अर्थ पालन-स्थान और 'ज' का अर्थ है उत्पत्ति-स्थान। उत्पत्ति, स्थिति और लय के स्थान एकमात्र नारायण ही हैं, अत: उन भगवान नारायण को छोड़कर संसार में दूसरा कोई 'अधोक्षज' नहीं कहला सकता।

प्राणियों के प्राणों की पुष्टि करनेवाला घृत मेरे स्वरूप अग्नि-देव की ज्वाला को जगानेवाला है, इसलिए वेदज्ञ मुझे 'घृतार्चि' कहते हैं।

शरीर में स्थित वात, पित्त, कफ को त्रिधातु कहते हैं। त्रिधातु कर्मजन्य माने गए हैं। जीव इन धातुओं के रहने से जीवन-धारण करता है और क्षीण होने पर क्षीण हो जाता है, इसलिए आयुर्वेद में मुझे 'त्रिधातु' कहा गया है।

वैदिक शब्दकोश में वृष का अर्थ धर्म बताया गया है, अत: उत्तम धर्म-स्वरूप मुझ वासुदेव को 'वृष' समझो।

कपि शब्द का अर्थ वराह एवं श्रेष्ठ है और वृष कहते हैं धर्म को। मैं धर्म और श्रेष्ठ वराह-रूपधारी हूँ। इसलिए कश्यप मुझे 'वृषाकपि' कहते हैं।

न चादिं न मध्यं तथा चैव नान्तं
कदाचिद् विदन्ते सुराश्चासुराश्च।
अनाद्यो ह्यमध्यस्तथा चाप्यनन्तः
प्रगीतोऽहमीशो विभुर्लोकसाक्षी।।

– मैं जगत का साक्षी और सर्वव्यापी ईश्वर हूँ। देवता तथा असुर भी मेरा आदि, मध्य और अन्त का कभी पता नहीं पाते हैं। इसलिए मैं 'अनादि', 'अमध्य' और 'अनन्त' कहलाता हूँ।

मैं पवित्र एवं श्रवण करने योग्य वचनों को ही सुनता हूँ और पापपूर्ण बातों को कभी ग्रहण नहीं करता, इसलिए मेरा नाम 'शुचिश्रवा' है।

पूर्वकाल में मैंने एक सींगवाले वराह का रूप धारण करके पृथ्वी को पानी से बाहर निकाला था, इसलिए मैं 'एकशृंग' कहलाता हूँ।

इस प्रकार वराह रूप धारण करने पर मेरे शरीर में तीन ककुध (ऊँचे स्थान) थे, इसलिए मुझे 'त्रिककुध' कहते हैं।

कपिल मुनि द्वारा प्रतिपादित सांख्यशास्त्र का विचार करनवाले विद्वानों, जिसे विरिंच कहा गया है, वह 'विरिंच' मैं ही हूँ।

सांख्यशास्त्र के आचार्यों ने मुझ सनातन देवता को 'कपिल' कहा है। वेदों में जिसकी स्तुति की गई है, वह तेजस्वी 'हिरण्यगर्भ' मैं ही हूँ।

इसके अतिरिक्त भी भगवान के मुञ्जकेश, नीलकण्ठ और खण्डपरशु नामों का उल्लेख मिलता है। ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन (१२)

नवम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ९वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

तीर्थों का महत्त्व

मान लीजिए हम पुरी में गये। वहाँ जाकर श्रीविग्रह के दर्शन करना चाहते हैं। वहाँ भीड़ में ठेलम-ठेल करके धक्का-मुक्की करते हुए हम भगवान के पास जाने की कोशिश करते हैं। जब श्रीविग्रह के सामने जाते हैं, तो मन का क्या भाव रहता है? आप देखेंगे कि आप कभी मन को स्थिर करने में समर्थ हो ही नहीं पाते। मन इतना विक्षिप्त है, मन इतना चंचल है कि वह विग्रह में जाकर नहीं टिकता है। केवल एक अहसास, एक बोध हमारे मन में आता है कि मैंने श्रीविग्रह के दर्शन कर लिए। दर्शन करने के बाद हम निकलते हैं और कहते हैं, चलो भाई, बहुत अच्छी तरह से दर्शन हो गया।

केवल श्रीविग्रह को देख लेना, यह तीर्थ का प्रयोजन नहीं है। श्रीविग्रह के पास जाकर वहाँ जो पवित्रता है, उस पवित्रता के माध्यम से अपने मन को एकाग्र करने में समर्थ हो जाना, यह तीर्थों का महत्त्व होता है। मनुष्य साधारणतया इस संसार की परिस्थितियों में अपने मन को एकाग्र नहीं कर पाता, इसीलिए कुछ समय तक के लिए मानसिक शान्ति मिले, मन एकाग्र हो, ईश्वर की महिमा में टिक जाए, इसलिए वह तीर्थ जाता है, मन्दिर में भगवान के दर्शन करने के लिए जाता है, और वहाँ पर जाकर भी अगर मन की विक्षिप्तता बनी रही, तो तीर्थ जाने का उद्देश्य साधित नहीं होता। कुछ लोगों को हमने देखा है, भक्तों और महात्माओं को देखा है कि वे मन्दिर में गए, बहुत भीड़ देखी, तो एक कोने में खड़े हो जाते हैं, मानो उनका चित्त वहीं पर एकाग्र हो गया। ईश्वर के चिन्तन में उनका मन लग गया। वे वहाँ पर जो भाव हैं, उसे अनुभव करने की, ग्रहण करने की कोशिश करते हैं। विधिपूर्वक भगवान का भजन करने का यह तात्पर्य है।

श्रीरामकृष्ण के जीवन में या चैतन्य महाप्रभु के जीवन में इस प्रकार का भाव दिखाई देता है। कैसे? जैसे हम कहा करते हैं, चैतन्य महाप्रभु ने वृन्दावन का उद्धार किया। इसका मतलब क्या है? मतलब यह है कि पहले वृन्दावन भूमि तो रही होगी, व्रजभूमि तो थी ही, परन्तु व्रजभूमि का जो माहात्म्य था, वह दब गया था। चैतन्य महाप्रभु वहाँ आते हैं, और एक-एक स्थान का माहात्म्य उद्घाटित करते हैं। उन्हें एक-एक प्रकार का अनुभव होता है – जैसे जिस समय वे निकुञ्ज-वन में जाते हैं, उस समय भीतर में अचानक महारास की अनुभूति होती है। उन्हें ऐसा लगता है कि यहाँ पर महारास हुआ था। साक्षात् भगवान ने वहाँ गोपियों के साथ जो रासक्रीड़ा की थी, वह स्थान यही है। इस प्रकार अनुभव के माध्यम से उन्होंने भिन्न-भिन्न स्थानों का उद्धार किया था। इसीलिए कहा करते हैं कि चैतन्य महाप्रभु ने वृन्दावन धाम का उद्धार किया। मानो उसका माहात्म्य प्रकट किया, जो माहात्म्य लुप्त हो गया था। कुछ साल पहले श्रीरामकृष्णदेव ने भी अपने जीवन द्वारा ऐसा ही दिखाया। तात्पर्य क्या है? तीर्थों में जाने के बाद यदि मन अपने ही आप भगवान के चरणों में एकाग्र होता है, तो तीर्थों का सुफल हमें मिल रहा है। पर यदि वहाँ भी जाकर मन विक्षिप्त होता है, तो समझ लेना चाहिए कि फल नहीं प्राप्त हो रहा है। जैसाकि कहा, मनुष्य अपने मन को और अधिक चंचल बना लेता है।

श्रीरामकृष्णदेव नदिया गये थे। नदिया चैतन्यमहाप्रभु का जन्मस्थान है। जब वे वहाँ गये, तो नदिया भर में घूमे। वहाँ चैतन्यमहाप्रभु के निमित्त बहुत-से मन्दिर हैं। पर उन समस्त स्थानों में जाने के बावजूद उनके मन में किसी प्रकार का भाव आया नहीं। वे भक्तों से कहते हैं, ''क्यों रे, जैसा चैतन्यमहाप्रभु के सम्बन्ध में भाव था, ऐसा तो यहाँ कुछ दिखाई नहीं देता।'' भक्तगण भी अब क्या कहें! चैतन्यमहाप्रभु साक्षात् राधा के अवतार हैं, ऐसी मान्यता है। भक्तिग्रन्थों में इस प्रकार कहा गया है कि वे साक्षात् राधा के ही अंश से अवतरित हुए हैं। चैतन्यमहाप्रभु के प्रेम के सम्बन्ध में इतनी महिमा है! श्रीरामकृष्णदेव इस पर विश्वास करते थे। वे जिस समय नदिया के मन्दिरों में गये, जो चैतन्यमहाप्रभु के निमित्त अर्पित हैं, उन्हें किसी प्रकार का भाव नहीं हुआ। उन्हें ऐसा लगा कि लोग इतना कहते हैं, पर कहाँ? यहाँ तो भीतर में किसी प्रकार की भावना आई नहीं। पर जब वे नदी में नाव से जा रहे थे, तब नदी में जाते-जाते अचानक नाव में वे गहरी भाव-समाधि में डूब गये। जब उनकी चेतना लौटी, समाधि से वे नीचे उतरे, तो कहते हैं, ''बिल्कुल ठीक है रे, ठीक चैतन्यमहाप्रभु साक्षात् अवतार ही थे। मुझे भाव हुआ। ऐसा लगता है कि जो पहले का नदिया था, जो शहर या गाँव था, वह नदी के अन्दर आ गया है।'' सचमुच, बाद में खोज करने पर पता चला, जो पहले का नदिया था, जहाँ पर चैतन्यमहाप्रभु का जन्म हुआ था, वह सारा नदिया नदी में डूब गया, क्योंकि नदी का प्रवाह बदलता रहता है। जो अभी का नदिया है, वह बसाया हुआ नदिया ग्राम है। जैसाकि प्रचलित है –द्वारका धाम, पुरी का धाम, जो पहले के धाम थे, कृष्ण की जो द्वारिका थी, वह तो समुद्र के अन्दर डूब गयी। ऐसी मान्यता है, जिसे हम सभी मानते हैं। हम कहा करते हैं कि जो अयोध्या नगरी थी, वह तो सरयूजी में डूब गयी। भगवान के समय की जो अयोध्या नगरी थी, वह सरयूजी के उदर में चली गयी। इसी प्रकार जो पुरी धाम था, वह समुद्र में समा गया। ऐसी मान्यताएँ हमें भक्तिग्रन्थों से भी प्राप्त होती हैं और इतिहास इस बात का साक्षी है।

मैं कह रहा था कि इन महापुरुषों को कैसा बोध होता है! तीर्थ में गये, जहाँ पर एक विशेष भाव है, जैसे चैतन्यमहाप्रभु का जन्मस्थान और उनका मन अपने ही आप एकाग्र हो जाता है, समाहित हो जाता है, समाधि में लीन हो जाता है। इसको कहते हैं विधिपूर्वक यजन करना, जो ईश्वर का भाव है, उस भाव को अपने जीवन में स्थापित करना। जिस समय हम देवताओं की पूजा करते हैं, तो वहाँ पर देवताओं से लेने का भाव होता है। हम किसी देवता की उपासना करते हैं, घर में किसी विग्रह को स्थापित करते हैं, पूजा करते हैं, पर उस विग्रह से हम कुछ याचना करते हैं। हम उनसे कुछ माँगते हैं और यह जो माँगने का भाव है, यह विधिपूर्वक भगवान की पूजा नहीं है। इसकी ओर भगवान संकेत कर देते हैं। जब हम देवता की उपासना करते हैं और याचना करते हैं, तब उस याचना की पूर्ति होती है, देवता हमें देते हैं, पर उस पूजा और उपासना के द्वारा भगवान नहीं मिलते। ईश्वर की प्राप्ति हमें नहीं होती।

परमेश्वर की उपासना ही सर्वश्रेष्ठ

ईश्वर समर्पित भाव से किया गया कर्म ही यज्ञ

इस बात पर बल देते हुए श्रीकृष्ण कह रहे हैं :

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते।।२४।।

हि (क्योंकि) सर्वयज्ञानाम् (सब यज्ञों का) भोक्ता च प्रभु: (भोक्ता और प्रभु) च अहम् एव (भी मैं ही हूँ) तु (परन्तु) ते माम् तत्त्वेन (वे मुझे तत्त्व से) अभिजानन्ति (नहीं जानते) अत: (इसीलिये) च्यवन्ति (पतित होते हैं)

– क्योंकि सभी यज्ञों का भोक्ता और प्रभु भी मैं ही हूँ, परन्तु वे मुझे तत्त्व से नहीं जानते, इसलिये पतित होते हैं।

जब भगवान ने कहा कि देख अर्जुन, जो श्रद्धा के साथ भिन्न-भिन्न देवताओं की उपासना करते हैं, वे भी एक प्रकार से मेरी ही उपासना करते हैं, पर अविधिपूर्वक करते हैं। अर्जुन के मन में प्रश्न उठा होगा, भगवन्, आप कहते हैं अविधिपूर्वक, इसका क्या मतलब है? वे लोग क्यों आपकी अविधिपूर्वक उपासना करते हैं? जब आप ही समस्त रूपों में प्रकट हुए हैं, तो देवता भी आपके ही रूप हैं। भिन्न-भिन्न देवता आपसे ही प्रकट हुए हैं। इसलिए देवता की उपासना के द्वारा जब हम आपकी ही उपासना करते हैं, तो फिर आप उसे अविधिपूर्वक क्यों कहते हैं? आपकी उपासना अविधिपूर्वक कैसे हुई? इसको समझाते हुए प्रभु कहते हैं – 'अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।' यह ठीक है अर्जुन कि समस्त यज्ञों का भोक्ता और प्रभु मैं ही हूँ। जितनी भी क्रियाएँ होती हैं, जब हम समर्पित भाव से कर्म करते हैं, तो उसे यज्ञ कहते हैं। यह गीता का तात्पर्य है कि जो कर्म

समर्पण के भाव से किया जाता है, वह यज्ञ बन जाता है। जब भी भगवान के चरणों में हम कुछ निवेदित करते हैं, तो उस क्रिया को यज्ञ के नाम से पुकारा गया।

भगवान क्या कहते हैं – अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता – मैं ही सब यज्ञों का भोक्ता हूँ, भोग करनेवाला हूँ। यज्ञ का जो फल है, उस फल की प्राप्ति मैं ही करता हूँ और उस फल का स्वामी भी मैं ही हूँ। मानो यज्ञों का प्रभु भी मैं ही हूँ, उनका स्वामी भी मैं ही हूँ। तात्पर्य है कि मैं ही प्रेरणा देता हूँ और अर्जुन! उस कर्म से जो फल निकलता है, उस फल को भोगनेवाला भी मैं ही हूँ। जीव अपने अज्ञान से ऐसा सोचता है कि वह क्रिया और यज्ञ करता है, पर यज्ञ के स्वामी तो भगवान हैं। उस यज्ञ से जो फल निकलता है, उस फल का भोक्ता वह अपने को मानता है और इस कारण वह तत्त्व से च्युत हो जाता है, गिर जाता है।

भगवान कहते हैं, यदि इस व्यक्ति के मन में ऐसा भी भाव हो, कि वे ही स्वामी हैं और उसके फल के भोक्ता भी वे ही हैं। तो इस क्रिया के द्वारा वह मेरी ही उपासना करता है और मुझे प्राप्त करने में समर्थ होता है। पर जीव का साधारणतया भाव क्या होता है? मैं ये क्रियाएँ कर रहा हूँ। प्रभु मुझे ये क्रियाएँ करने की प्रेरणा देते हैं। वे ही यज्ञ के स्वामी हैं। पर इस यज्ञ के द्वारा जो फल प्राप्त होगा, उसका भोगनेवाला मैं हूँ। मैं अपने भोग के लिए इस यज्ञ को सम्पन्न कर रहा हूँ। ऐसा भाव होने के कारण उस तत्त्व से वह गिर पड़ता है, यह भगवान का तात्पर्य है।

गीता में ज्ञान, भक्ति तथा कर्म का समन्वय

इस श्लोक में, हम गीता की धारा को देखते हैं। गीता की धारा माने कैसी धारा? कई लोग कहते हैं कि गीता में ज्ञानयोग की चर्चा है। कई कहते हैं – गीता में भक्तियोग की चर्चा ही प्रधान है। कुछ लोग कहते हैं कि गीता में कर्मयोग की चर्चा ही प्रधान है। पर जैसा हम बारम्बार कहते आ रहे हैं, यहाँ पर तीनों योगों का सुन्दर समन्वय है। ज्ञान भी हो, भक्ति भी हो और उसी प्रकार कर्म भी हो। मनुष्यों के भीतर तीन शक्तियाँ हैं – विचार की शक्ति, भावना की शक्ति और क्रिया की शक्ति। इन तीनों शक्तियों की यथार्थ चरितार्थता हो, यह गीता का तात्पर्य है। जैसा तिलक कहा करते हैं - ज्ञानमूलक भक्तिप्रधान कर्मयोग, यह गीता का तात्पर्य है। बड़ी सुन्दर बात वे कहते हैं। ऐसी भक्ति जिसका आधार ज्ञान है। बिना ज्ञान के भक्ति हो नहीं पाती। तो जो ज्ञान लेकर भक्ति करता है और उसके बाद फल की इच्छा न करते हुए निरन्तर कर्म करता है, तिलक के अनुसार, यही गीता का तात्पर्य है। अरविन्द ने जिसे कहा है – Integral या पूर्णयोग। आप लोग अगर पढ़ते होंगे, तो अरविन्द का जो दर्शन है, उसमें एक महत्त्वपूर्ण बात है, उनका Integral – पूर्णयोग। मैं पहले यही सोचा करता था कि Integral या पूर्णयोग, यह कौन-सा नया योग है? जब उनका साहित्य, उनका दर्शन मैंने पढ़ा, तो पाया कि वे यही कहते हैं कि कई ग्रन्थों ने मनुष्य के केवल एक ही पक्ष पर जोर दिया है, जो भक्ति के ग्रन्थ हैं, वे उसके भावनात्मक पक्ष पर जोर देते हैं और जो कर्म के ग्रन्थ हैं, जैसे मीमांसा के ग्रन्थ हैं, वे उसके केवल क्रियाशक्तिवाले पक्ष पर अधिक जोर देते हैं कि कर्मकाण्ड करते जाओ। जो ज्ञान, विचारपरक ग्रन्थ हैं, जो विचार या चिन्तन के ग्रन्थ हैं, दार्शनिक ग्रन्थ हैं, वे उसके केवल विचार पक्ष पर जोर देते हैं। अरविन्द ने कहा कि मैं ऐसा योग सबके समक्ष रखना चाहता हूँ, जहाँ पर तीनों मिले हुए हों। इन तीनों शक्तियों की जहाँ चरितार्थता हो, मनुष्य की भक्ति, उसका भाव, मनुष्य की भावना, उसका विचार, मनुष्य की क्रियाशक्ति, इन तीनों का सुन्दर समन्वय हो सके, उसको उन्होंने Integral या पूर्णयोग के नाम से पुकारा। यह कोई नया नहीं। गीता में इस पर समान रूप से बल दिया गया है।

भगवान कहते हैं – अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च। यह हो गया – ज्ञान। इस ज्ञान के न होने के कारण क्या होता है? कहते हैं – तत्त्वेन अतश्च्यवन्ति ते – वे मुझे तत्त्व से नहीं जानते और पतित हो जाते हैं। उन्होंने इसके पहले के श्लोक में भक्ति की बात कही, अब इस श्लोक में ज्ञान की बात कहते हैं, साथ-ही-साथ कह देते हैं कि सब यज्ञों का भोक्ता और स्वामी मैं ही हूँ। यज्ञ करने का भाव मानो क्रिया का भाव। तो ज्ञान, भक्ति और कर्म इन तीनों को लेकर भगवान चलते हैं और कहते हैं – अर्जुन, देखो, यह जो पथ से च्युत हो गया, मुझे प्राप्त नहीं कर सका, क्यों? क्योंकि वह अविधिपूर्वक मेरा भजन करता है। इसका तात्पर्य यह है कि वह देवताओं का भजन तो करता है, पर मुझे सभी यज्ञों के भोक्ता और स्वामी के रूप में नहीं जानता। न जानने के कारण वह देवताओं के पास तो चला जाता है, पर मेरी प्राप्ति वह नहीं कर पाता। **(क्रमशः)**

प्रश्नोपनिषद् (७)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

सूर्य की – प्राण या भोक्ता के रूप में उपासना

य: च असौ चन्द्रमा मूर्ति: अन्नम् अमूर्ति: च प्राण: अत्ता आदित्य: तत् एकम् एतत् मिथुनं सर्वं कथं प्रजा: करिष्यते इति उच्यते -

जो अन्न रूपी चन्द्रमा मूर्ति है और (दूसरा) जो अमूर्त या सूक्ष्म प्राण या भोक्ता-रूप आदित्य है, ये दोनों ही एक हैं। यह एक जोड़ा किस प्रकार समस्त प्राणियों की उत्पत्ति करेगा, अब यही बताते हैं –

संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च। तद्ये ह वै तदिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते। त एव पुनरावर्तन्ते तस्मादेत ऋषय: प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते। एष ह वै रयिर्य: पितृयाण:।।९।।

अन्वयार्थ – संवत्सर: संवत्सर वै ही प्रजापति: प्रजापति है; तस्य उस (संवत्सर नामवाले प्रजापति) के अयने दो अयन या मार्ग हैं – दक्षिणम् च दक्षिण और उत्तरम् च उत्तर। तत् उनमें से ये ह वै जो लोग इष्टापूर्ते इष्ट तथा पूर्त में इति (दत्त) आदि को कृतम् (श्रौत तथा स्मार्त) कर्तव्य-कर्म के रूप में, नित्यकर्म के रूप में नहीं, तत् उपासते तत्परता के साथ अनुष्ठान करते हैं, ते वे चान्द्रमसम् एव केवल चन्द्रमा-सम्बन्धी लोकम् लोक को अभिजयन्ते जीतते अर्थात् प्राप्त करते हैं। ते वे लोग पुन: पुन: आवर्तन्ते एव अवश्य ही आवर्तन करते हैं। तस्मात् इसी कारण एते ये ऋषय: स्वर्गद्रष्टा प्रजाकामा: सन्तान-कामी गृहस्थगण दक्षिणम् दक्षिण-मार्ग अर्थात् चन्द्रलोक प्रतिपद्यन्ते प्राप्त होते हैं; य: जो पितृयाण: चन्द्र है एष: ह वै यही रयि: अन्न है।

भावार्थ – संवत्सर ही प्रजापति है; उस (संवत्सर नामवाले प्रजापति) के दो अयन या मार्ग हैं – दक्षिण और उत्तर। उनमें से जो लोग इष्ट तथा पूर्त (दत्त) आदि को, नित्यकर्म के रूप में नहीं, (अपितु) (श्रौत तथा स्मार्त) कर्तव्य-कर्म के रूप में, तत्परता के साथ अनुष्ठान करते हैं, वे केवल चन्द्रमा-सम्बन्धी लोक को जीतते अर्थात् प्राप्त करते हैं। वे लोग पुन: अवश्य ही आवर्तन करते हैं। इसी कारण ये स्वर्गद्रष्टा सन्तान-कामी गृहस्थगण दक्षिण-मार्ग अर्थात् चन्द्रलोक को प्राप्त होते हैं; जो चन्द्र है यही अन्न है।

भाष्य – तत् एव काल: संवत्सर: वै प्रजापति: तत् निर्वर्त्यत्वात् संवत्सरस्य। चन्द्र-आदित्य-निर्वर्त्य-तिथि-अह: -रात्र-समुदाय: हि संवत्सर: तत् अन्यत्वात् रयि-प्राण-मिथुनात्मक: एव इति उच्यते। तत् कथम्?

भाष्यार्थ – वह (मिथुन या जोड़ा) ही संवत्सर-रूपी काल या प्रजापति है, क्योंकि इस (जोड़े के द्वारा ही) संवत्सर (वर्ष) बना; चन्द्र तथा सूर्य के द्वारा निर्धारित तिथि तथा दिन-रात का समुदाय – यही संवत्सर या वर्ष होता है। संवत्सर (वर्ष) सूर्य-चन्द्र से अभिन्न होने के कारण, सूर्य और चन्द्र का जोड़ा ही संवस्तर है। वह कैसे?

तस्य संवत्सरस्य प्रजापते: अयने मार्गौ द्वौ दक्षिणं च उत्तरं च। द्वे प्रसिद्धे हि अयने षण्मास-लक्षणे याभ्यां दक्षिणेन उत्तरेण च याति सविता केवल-कर्मिणां ज्ञान-संयुक्त-कर्मवतां च लोकान् विदधत्। कथम्? –

उस संवत्सर-रूप प्रजापति के दो मार्ग होते हैं – दक्षिण तथा उत्तर – ये छह-छह महीनेवाले दो प्रसिद्ध मार्ग हैं; जिनके द्वारा सूर्य लोकों का विधान करता हुआ केवल कर्म-मार्गियों के लिये (दक्षिणायन) और (दूसरा) उपासनायुक्त कर्म-मार्गियों के लिये (उत्तरायण) (इस प्रकार क्रम से) दक्षिण तथा उत्तर मार्ग पर चलता है। कैसे? –

तत् तत्र च ब्राह्मण-आदिषु ये ह वै तत् उपासते इति क्रिया-विशेषण: द्वितीय: तत् शब्द:। इष्टं च पूर्तं च इष्टापूर्ते इत्यादि कृतम् एव उपासते नाकृतं नित्यं ते चान्द्रमसं चन्द्रमसि भवं प्रजापते: मिथुनात्मकस्य अंशं रयिम् अन्नभूतं लोकम् अभिजयन्ते कृत-रूपत्वात् चान्द्रमस्य। ते तत्र एव च कृत-

क्षयात् पुनरावर्तन्ते 'इमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति' (मुण्डक. १/२/१०) इति हि उक्तम्।

ब्राह्मण आदि (तीन वर्णों) के बीच में जो कोई भी (पूर्वोक्त बातों को समझकर) इसकी उपासना (ज्ञानपूर्वक ध्यान) करता है। यहाँ दूसरा तत् शब्द क्रिया-विशेषण है, वही कर्तव्य है, ऐसा सोचकर जो इष्ट (याग-यज्ञ) तथा पूर्त (परोपकार) का अनुष्ठान करते हैं; नित्य कारण (ब्रह्म) को न समझते हुए, जो केवल कार्य (जगत्) का ही अनुष्ठान करते हैं, वे चन्द्रमा-सम्बन्धी लोक को जाते हैं। चन्द्रमा – प्रजापति के उस जोड़े का एक अंश तथा अन्न-रूप से जो लोक है, उसे प्राप्त करते हैं। कार्य अर्थात् कर्मफल रूप होने से वह (चन्द्रलोक) नश्वर है। वहाँ जब कर्मफल समाप्त हो जाते हैं, तो वे पुन: इसी लोक में लौट आते हैं, जैसा कि कहा है, "(अपने बचे हुए कर्म के अनुसार) इस (मनुष्य) लोक (योनि) या इससे भी निम्न लोक अर्थात् योनि को प्राप्त करते हैं।" (मुण्डक. १/२/१०)

यस्माद् एवं प्रजापतिम् अन्नात्मकं फलत्वेन अभिनिर्वर्तयन्ति चन्द्रम् इष्टापूर्त-कर्मणा एते ऋषय: स्वर्गद्रष्टार: प्रजाकामा: प्रजार्थिन: गृहस्था: तस्मात् स्वकृतम् एव दक्षिणं दक्षिणायन-उपलक्षितं चन्द्रं प्रतिपद्यन्ते। एष ह वै रयि: अन्नं य: पितृयाण: पितृयाण-उपलक्षित: चन्द्र:।।

चूँकि ये लोग इष्टापूर्त कर्म (यज्ञ तथा परोपकार) के द्वारा, फलरूप से चन्द्रलोक या अन्नरूप प्रजापति को सिद्ध करते हैं; अत: सन्तानों की इच्छा रखनेवाले ये गृहस्थ ऋषिगण, अपने ही कर्मों के फलस्वरूप दक्षिणायन द्वारा उपलक्षित चन्द्रलोक को प्राप्त करते हैं। यही रयि या अन्न है, जो पितृयान कहलाता है, पितृयान से चन्द्रलोक उपलक्षित है।।९।। **(क्रमश:)**

संस्कृत काव्य

ब्रह्मसूक्तम्

डॉ. सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

येन पश्यन्ति नेत्राणि नेत्रैश्च यन्न दृश्यते।
तदेव ब्रह्म यत्शक्त्या नेत्रेन्द्रियं प्रकाशते।।१।।
स्वाद्यते येन जिह्वाभिर्नास्वादयति यद्रसा।
तदेव ब्रह्म यत्शक्त्या लोलेन्द्रियं प्रकाशते।।२।।

अर्थ – जिसके माध्यम से आँखें देख पाती हैं, लेकिन आँखों से जो नहीं दीखता। जिसकी शक्ति से नेत्र-इन्द्रिय प्रकाशित होती है, वही ब्रह्म है।१। जिसके द्वारा जिह्वा स्वाद लेती है, लेकिन जिह्वा से जिसका रसास्वादन नहीं किया जा सकता। जिसकी शक्ति से रसेन्द्रिय प्रकाशित होती है, वही ब्रह्म है।२।

येन जिघ्रन्ति घ्राणानि घ्राणैश्च यन्न घ्रायते।
तदेव ब्रह्म यत्शक्त्या घ्राणेन्द्रियं प्रकाशते।।३।।
येन शृण्वन्ति श्रोत्राणि श्रोत्रैश्च यन्न श्रूयते।
तदेव ब्रह्म यत्शक्त्या श्रोत्रेन्द्रियं प्रकाशते।।४।।

अर्थ – जिसके माध्यम से नासिका गन्ध ग्रहण करती है, लेकिन नासिका से जिसकी गन्ध ग्रहण नहीं की जा सकती। जिसकी शक्ति से घ्राणेन्द्रिय प्रकाशित होती है, वही ब्रह्म है।३। जिससे कान श्रवण करते हैं, लेकिन कानों से जिसे सुना नहीं जा सकता। जिसकी शक्ति से श्रोत्रेन्द्रिय प्रकाशित होती है, वही ब्रह्म है।४।

त्वचः स्पृशन्ति येनैताः त्वग्भिर्न स्पृश्यते च यत्।
तदेव ब्रह्म यत्शक्तया त्वगिन्द्रियं प्रकाशते।।५।।
मनांसि मन्वते येन, मनोभिर्यन्न मन्यते।
तदेव ब्रह्म यत्शक्त्यान्तरिन्द्रियं प्रकाशते।।६।।

अर्थ – जिसके माध्यम से यह त्वचा स्पर्श कर पाती है, लेकिन त्वचा से जिसे स्पर्श नहीं किया जा सकता। जिसकी शक्ति से त्वगिन्द्रिय प्रकाशित होती है, वही ब्रह्म है।५। जिसके माध्यम से मन मनन कर पाता है, लेकिन मन से जिसे मनन नहीं जा सकता। जिसकी शक्ति से आन्तरिक इन्द्रिय (मन) प्रकाशित होता है, वही ब्रह्म है।६।

बुद्धयो ये न जानन्ति बुद्धिभिर्ज्ञायते न यत्।
तदेव ब्रह्म यत्शक्त्या ज्ञानेन्द्रियं प्रकाशते।।७।।
कैश्चिद् न ज्ञायते ब्रह्म दृश्यते वानुभूयते।
ज्ञातं साक्षात्कृतं तेन यस्मिन्नेतदनुग्रह :।।८।।

अर्थ – जिसके माध्यम से बुद्धि जानकारी कर पाती है, लेकिन बुद्धि से जिसे नहीं जाना जा सकता। जिसकी शक्ति से ज्ञानेन्द्रिय (बुद्धि) प्रकाशित होती है, वही ब्रह्म है।७। ब्रह्म को न कोई जान सकता है, न देख सकता है और न अनुभव कर सकता है। जिस पर ब्रह्म का अनुग्रह होता है, वही उसे जान पाता है और साक्षात्कार करता है।८। ○○○

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (३६)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

गोंदलपाड़ा

ठीक दो दिन बाद ही स्वामीजी को दार्जिलिंग भेज दिया गया। उनके साथ गुडविन आदि अनेक लोग गये थे। बाद में स्वामी ब्रह्मानन्द, तुरीयानन्द आदि कुछ अन्य लोग भी स्वामीजी के पास गये।

दार्जिलिंग जाने के ठीक पहले, उन्होंने आचार-निष्ठा की प्रतिमूर्ति स्वामी रामकृष्णानन्द को, मद्रास (चेन्नई) में मठ तथा ठाकुर-सेवा प्रारम्भ करने के उपयुक्त मानकर, उन्हें चेन्नई जाने को कहा। उनके साथ (स्वामीजी के प्रथम संन्यासी शिष्य) सदानन्द भी गये।

यात्रा के पूर्व वाले दिन, रात के आठ बजे वे लोग गिरीश बाबू से मिलने, उनके बागबाजार के बोसपाड़ा में स्थित आवास पर गये। रास्ते में सदानन्द को एक कुत्ते ने काट लिया था। अगले दिन ही वे लोग चेन्नई के लिये रवाना हो गये।

बाद में मैंने सुना कि जिस दिन वे लोग मद्रास गये, उसी दिन उस मुहल्ले में एक कुत्ता पागल हो गया था। यह सुनकर मुझे शंका हुई कि कहीं ऐसा तो नहीं कि उस पागल कुत्ते ने ही सदानन्द को काटा हो! अत: (मुझे लगा कि) उसके लिये तत्काल (चन्दननगर के समीप स्थित) गोंदलपाड़ा की दवा भेज देना उचित होगा।

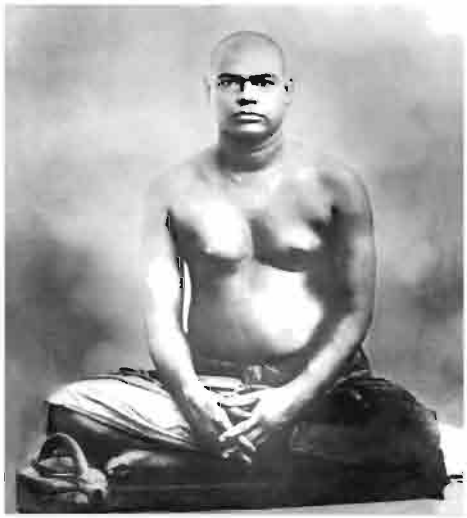

स्वामी रामकृष्णानन्द जी महाराज

आलमबाजार मठ में उस समय स्वामी प्रेमानन्द, शिवानन्द, सच्चिदानन्द, तुरीयानन्द आदि केवल कुछ लोग ही रह गये थे। स्वामीजी के दार्जिलिंग चले जाने के बाद मठ प्राय: शून्य तथा निस्तब्ध हो गया था।

मठ में आकर, मैंने सच्चिदानन्द को अपने गोंदलपाड़ा जाने की बात कही। भोजन आदि के बाद अपराह्न में करीब चार बजे, केवल दो रुपये तथा एक चादर लेकर निकल पड़ा। सोचा था कि अगले दिन सुबह ही लौट आऊँगा, तो फिर दूसरे वस्त्र आदि ले जाने की क्या जरुरत?

गंगा पार होकर, बाली स्टेशन से यात्रा करके ठीक संध्या के समय चन्दननगर पहुँचकर वहाँ से गोंदलपाड़ा के काली-मन्दिर में गया। इसके बाद, वहाँ जो व्यक्ति औषधि देता है, उसे सब कुछ समझाकर बताने पर, उसने एक गोली दी और कहा कि रोगी को लिखकर सूचित कर दिया जाय कि इस दवा को खाने के बाद तीन-चार दिनों तक वे दही, भात, केले, कच्चे नारियल आदि ठण्डी चीजें ही खाते रहें। औषधि के लिये सवा रुपये और बाली से चन्दननगर तक का रेलभाड़ा – इस प्रकार उन दो रुपयों में से डेढ़ रुपये खर्च हो चुके थे।

रात को गोंदलपाड़ा में एक सज्जन के घर में ठहरा। वहीं, एक पत्र में, मैंने उसे लेने की विधि आदि लिखकर उसके साथ दवा को भी रख दिया। स्वामी रामकृष्णानन्द चेन्नई जाकर सर्वप्रथम 'कैसल कर्नन' (Castle Carnon) में ठहरने वाले थे; मैंने फरासडांगा डाकघर से पत्र को उसी पते पर भेजा।

फरासडांगा में दोपहर बिताने के बाद, शाम को मैंने हुगली जाने का निश्चय किया। उस समय मेरे मन में निरन्तर यह बात उठती रहती कि मैं जहाँ कहीं भी जाऊँ, वहाँ मुझे ठाकुर के भक्तों का संग मिले।

गंगा-स्नान के बाद भिक्षा के लिये गंगातट पर ही स्थित एक बड़े मकान में चला गया। सोच रहा था कि मकान-

मालिक ठाकुर के भक्त न हुए, तो यह मेरे मनोनुकूल नहीं होगा। बाद में पता चला कि इस मकान में तेलिनीपाड़ा के बाबुओं के एक हिस्सेदार निवास करते हैं। वे तथा एक अन्य व्यक्ति मुझे देखकर और मेरे मुख से यह सुनकर कि मैं ठाकुर का शिष्य हूँ, रोने लगे और बोले, "अहा, कैसे अद्भुत ठाकुर आये थे! आप लोग धन्य हैं!" मनोकामना के अनुरूप लोगों को पाकर मेरे भी आनन्द की सीमा न रही।

हुगली

उनके घर में भोजन आदि करने के बाद, शाम को एक नाव में बैठा और दो आने देकर हुगली जा पहुँचा। हुगली में गंगातट पर ही योगेश बाबुओं का निवास है। वहाँ सात-आठ वकील रहा करते थे। मुझे देखकर योगेश बाबू तथा अन्य वकीलों को बड़ा आनन्द हुआ, क्योंकि बहुत दिनों पूर्व से ही मेरी योगेश बाबुओं के घर आने की बात थी। रात के बारह-एक बजे तक उन लोगों के साथ ठाकुर, स्वामीजी तथा अपने तिब्बत-भ्रमण पर चर्चा करते हुए मेरा समय बड़े आनन्दपूर्वक बीता।

सबेरे हाथ-मुँह धोने के बाद मैंने देखा कि सामने गंगा में एक छोटी-सी नौका तैर रही है। योगेश बाबू से पूछने पर पता चला कि ग्यारह बजे जो स्टीमर आयेगी, उसके द्वारा शान्तिपुर, नवद्वीप, कालना आदि स्थानों की यात्रा हो सकती है। नवद्वीप का भाड़ा एक रुपया था।

स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज

स्वामीजी के दार्जिलिंग जाने के बाद से मठ करीब सूना ही पड़ा देख आया था। मेरे मन में प्रबल इच्छा हुई कि क्यों न इस अवकाश के दौरान ही गौरांग महाप्रभु की लीलास्थली और नव्य-न्याय के प्रधान शिक्षा-केन्द्र नवद्वीप को देख आऊँ। क्योंकि उस समय मैंने संकल्प कर रखा था कि एक बार बंगाल के बाहर गया, तो फिर आजीवन इस प्रदेश में फिर नहीं लौटूँगा।

सुबह के समय, मैंने योगेश बाबू को अपने नवद्वीप जाने के संकल्प की बात से अवगत कराया और आलमबाजार मठ को एक पत्र लिख दिया। योगेश बाबू मुझे एक रुपया देकर कचहरी चले गये।

नवद्वीप के पथ पर

मेरी कुल पूँजी थी – एक रुपये साढ़े पाँच आने। स्टीमर-घाट पर जाकर देखा कि और भी कुछ यात्री बैठे हुए हैं। यह १८९७ ई. की दोलपूर्णिमा (होली) के पूर्वदिन की बात है। स्टीमर के ग्यारह बजे आने की बात थी, किन्तु वह एक बजे तक नहीं आया। लेकिन गंगा के उस पार से, घोषपाड़ा मेले के लिये यात्रियों से भरे हुए दो स्पेशल स्टीमर रवाना हो गये। एक बजे के बाद टिकट बाबू ने यात्रियों के पैसे वापस करके कहा कि स्टीमर कहीं अटक गया है, आज वह नहीं आएगा। परन्तु मेरी उसी दिन नवद्वीप जाने की इच्छा इतनी प्रबल हो गयी थी कि मैंने टिकट-मास्टर से जानकारी ली और गंगापार नैहाटी जा पहुँचा।

उस समय नैहाटी में घोषपाड़ा के यात्रियों की इतनी भीड़ थी कि मैं स्टेशन के भीतर नहीं जा सका। रात के करीब दस बजे मैंने बगूला का एक टिकट लिया और ट्रेन में सवार हो गया। किराया शायद आठ आने था। भोर के समय बगूला में उतरकर दोल-पूर्णिमा के पूर्व दिन, हल्की चाँदनी रात में जाकर बाजार के झोपड़े में सो गया। एक नींद में ही पूरी रात बीत गयी। खूब भोर में हाथ-मुँह धोकर पैदल ही कृष्णनगर की ओर चल पड़ा।

चलते-चलते करीब बारह बजे मैं खड़िया-नदी के किनारे स्थित हाँसखाली गाँव में जा पहुँचा। वहीं स्नान करके नदी के उस पार चिउड़ा-मुरमुरे-मिठाई की दुकान में थोड़ा जलपान करके फिर चल पड़ा। जलपान करने के बाद हाथ में केवल दस आने ही बचे थे।

ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में उस प्रचण्ड धूप में चलते हुए बड़े कष्ट का अनुभव हो रहा था। हाँसखाली से कुछ दूर जाने के बाद रास्ते के दोनों तरफ बड़े-बड़े शीशम के वृक्षों की छाया होने से चलने में ज्यादा कष्ट नहीं हो रहा था। जिन सदाशय कमिश्नर साहब ने ये छायेदार वृक्ष लगवाये थे, अब भी उस मार्ग के सारे यात्री ग्रीष्म-काल की उस तप्त धूल-भरे मार्ग पर चलते हुए दोनों हाथ उठाकर उनकी जय-जयकार करते हैं।

शेष भाग पृष्ठ ५७२ पर

विश्व के दो महान दार्शनिकों का परस्पर अनूठा उपहार

प्रो.बालकृष्ण कुमावत, उज्जैन

अमेरिका में इमर्सन एक चर्च में पादरी था और उसने रविवार को चर्च में गीता पढ़ानी प्रारम्भ की। लोगों ने शिकायत की कि तुम्हें बाईबिल पढ़ाने को रखा गया है, तुम काफिरों की पुस्तक क्यों पढ़ा रहे हो? उसने कहा यदि तुम्हें यूनिवर्सल बाईबिल चाहिए, तो वह भगवद्गीता है। यदि क्रिश्चियन बाइबिल चाहिए, तो यह पड़ी रहने दो। उसने चर्च की नौकरी त्याग दी, लेकिन भगवद्गीता को हृदय से लगाया और सारे संसार में भगवद्गीता का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। उस समय इंग्लैण्ड में एक बहुत बड़ा दार्शनिक हुआ था, उसका नाम था कार्लाइल। वह अंग्रेजी का बहुत बड़ा लेखक था। इंग्लैंड में कार्लाइल यूनिवर्सिटी है। एक बार इमर्सन कार्लाइल से मिलने गया। वहाँ कार्लाइल ने इमर्सन से कहा - 'मेरे मित्र! तुम डालरों के देश से आये हो। तुम मेरे लिये क्या उपहार लाये हो? उसने कहा – 'मुझे शर्मिन्दा मत करो। सांस्कृतिक दृष्टि से हम दिवालिये हैं। हमारे पास अपना कुछ भी नहीं है। हमारी जाति यूरोप से गयी है, धर्म हमारा यहूदियों का दिया हुआ है, इजराइल से गया हुआ है। इसलिये अमेरिकन नाम से अपना कुछ है ही नहीं, जो आपको हम कुछ दे सकें और इतना कहते-कहते उसकी आँखों में आँसू आ गये। कार्लाइल बोला – अरे यार! मैंने उपहार माँगा और तुम आँसू बहाने लगे। उसने कहा – तुमने मुझसे आज उपहार माँगा है, तो आज मैं तुम्हें जीवन की सबसे बड़ी सम्पत्ति बाँट रहा हूँ, जिसे मैं किसी को नहीं दे सकता था। वह मेरे लिये पावनतम और पवित्रतम वस्तु थी, पर आज तुमने उपहार माँगा, तो दे रहा हूँ। उसने जेब से भगवद्गीता की पोथी निकाली। मेरे मित्र! गुरु थोरो प्रतिदिन प्रात:काल गीता के अमृत जल से स्नान करते थे। इस गीता का पाठ करते हुए श्रद्धा के आँसुओं से पवित्र हुई गीता की पोथी मेरे जीवन की सबसे बड़ी सम्पत्ति थी। यही गीता की पोथी आपको दे रहा हूँ। कार्लाइल ने उसकी पीठ पर हाथ रखा और कहा – मेरे मित्र! जैसे लगता है कि तुम मेरे मन की बात ताड़ गये हो। क्या तुम मुझे देने के लिये गीता लाये हो? मैं तुझे देने के लिये क्या लाया था? मैं भी तुझे देने के लिए भगवद्गीता ही लाया हूँ और कार्लाइल ने भी

वाल्डो इमर्सन

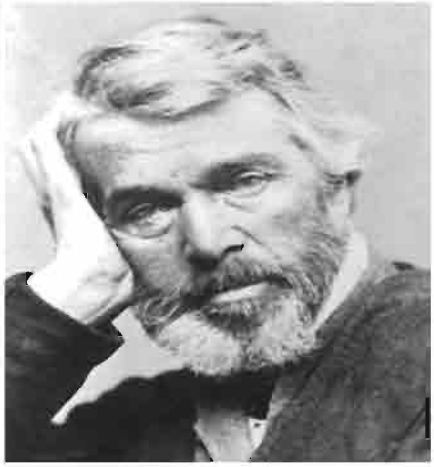

थॉमस कार्लाइल

अपनी जेब से भगवद्गीता निकाली और इमर्सन को दे दी। कार्लाइल इंग्लैण्ड का सबसे बड़ा दार्शनिक और इमर्सन अमेरिका का सबसे बड़ा दार्शनिक। ये इंग्लैण्ड में परस्पर मिलते हैं और परस्पर गीता भेंट करते हैं।

यह घटना एक पत्रिका में छपी और वह पत्रिका मसूरी के एक युवक को, जो नया-नया एम.ए. पास करके दर्शनशास्त्र के व्याख्याता के पद पर नियुक्त था, उसके हाथ में पड़ी। रातभर वह पत्रिका को पढ़ता रहा। उसने पढ़ा इंग्लैण्ड का सबसे बड़ा दार्शनिक और अमेरिका का सबसे बड़ा दार्शनिक एक-दूसरे से इंग्लैण्ड में मिलने पर एक – दूसरे को भगवद्गीता भेंट करते हैं, तब हमें पाश्चात्य दर्शन से क्या लेना है? जब पश्चिमवाले भी गीता पर मुग्ध हैं, तो उसने पाश्चात्य दर्शन की पुस्तकों को ताक पर रख दिया और गीता के स्वाध्याय में लग गया। उस भगवद्गीता की कृपा से वह हिन्दुत्व का, भारतीय संस्कृति का सबसे बड़ा व्याख्याता और युग की दार्शनिक मनीषा का मणिमुकुट बना। वह युवक था डॉ. राधाकृष्णन्। डॉ. राधाकृष्णन् भारत के राष्ट्रपति भी हुए। उन राधाकृष्णन् के जीवन में परिवर्तन करनेवाली है यह भगवद्गीता। उनको गीता ने कितना महान व्याख्याता बना दिया। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (६०)

स्वामी भूतेशानन्द

(३६)

प्रश्न – महाराज ! कहा जाता है – गुरु शिष्य का सम्बन्ध चिरन्तन – शाश्वत है। इसका क्या अर्थ है?

महाराज – चिरन्तन का अर्थ होता है नित्य। गुरु बनाने के पहले गुरु के साथ शिष्य का सम्बन्ध नहीं था और गुरु की महासमाधि के बाद भी शिष्य के साथ सम्बन्ध नहीं रहेगा। अत: तीन कालों में सम्बन्ध नहीं रह रहा है। इसलिए जो तीनों कालों में वर्तमान नहीं है, वह नित्य नहीं हो सकता।

– तो ऐसा क्यों जाता है?

महाराज – यह अतिशयोक्ति है। गुरु के प्रति श्रद्धा ज्ञापित करने के लिए कहा जाता है।

– महाराज! सच्चिदानन्द ही गुरु हैं, भक्त भगवान का सम्बन्ध नित्य है, क्या इसे हमलोग इस प्रकार समझेंगे?

महाराज – हाँ, यही बात है। गुरु एक सच्चिदानन्द ही हैं। भक्त-भगवान का सम्बन्ध नित्य है। मनुष्य-गुरु का देह-त्याग होगा। किन्तु भगवान नित्य और उनके साथ सम्बन्ध भी नित्य है।

– महाराज ! कहा जाता है कि जब तक गुरु के सभी शिष्यों की मुक्ति नहीं हो जाती, उद्धार नहीं हो जाता, तब तक गुरु की भी मुक्ति नहीं है। इस कथन को हमलोग कैसे समझेंगे?

महाराज – हाँ, गुरु की मुक्ति नहीं है, अर्थात् गुरु दया के वशीभूत होकर शिष्य पर कृपा करते हैं। गुरु कृपावश अपने शरीर-त्याग के बाद भी सूक्ष्म शरीर में शिष्य की सहायता करने की प्रतिक्षा करते हैं।

प्रश्न – महाराज ! 'जीवन में आवाहन भी न करो और विसर्जन भी मत करो' की नीति कैसी है?

महाराज – यदृच्छालाभसन्तुष्ट:। जो हमारे पास है उससे ही सन्तुष्ट रहना। अल्पतम आवश्यकता से अधिक की इच्छा मत करना। जितना है, उतना ही पर्याप्त है। यही सुखी होने का मार्ग है। चरम दुर्दशा हेतु स्वयं को तत्पर रखने से देखोगे, तुम सदा सुखी हो। जब मैं चेरापूँजी में था, तब बहुत तपस्या करनी पड़ती थी। किन्तु उस समय मैं अपने उत्तरकाशी के तपस्या के दिनों के साथ तुलना करता था।

उत्तरकाशी में अत्यधिक अभाव था। उन सब दिनों के साथ तुलना करके देखता था, तो चेरापूँजी की अवस्था बहुत अच्छी थी।

प्रश्न – महाराज ! पुराने दिनों की कुछ बातें कहिये न!

महाराज – तब मैं मठ में था। मैंने सुना कि मुझे शिलाँग में भेजा जाएगा। सबने मुझे बहुत डराया था – वहाँ बहुत अधिक ठण्डा है, अभाव है, तुम वहाँ रह नहीं सकोगे इत्यादि। मैं कोई उत्तर न देकर चुपचाप सुनता रहता। कुछ दिन बाद सुना गया कि शिलाँग नहीं, मुझे चेरापूँजी भेजने का निश्चय किया गया है। सब लोग मुझे और अधिक भयभीत करने लगे। वहाँ शिलाँग से कई गुना अधिक ठण्डा है, घोर वर्षा होती है, खाने-पीने का कुछ नहीं है, बहुत अभाव है इत्यादि कह-कह कर लोगों ने हमें बहुत चिन्तित कर दिया। कई लोगों ने कहा कि तुम वहाँ जाने पर मर जाओगे। जो भी हो, बहुत दुश्चिन्ता हुई। कुछ निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ। एक दिन मैंने पूज्य विशुद्धानन्दजी महाराज को जाकर कहा – 'महाराज! मैं चेरापूँजी नहीं जाऊँगा।'' महाराज ने चुपचाप सुन लिया, एक शब्द भी नहीं कहा। मैं आ गया। देखते-देखते सात दिन बीत गये। महाराज ने भी कुछ नहीं कहा और मैंने भी कुछ नहीं कहा। उसके बाद मेरे मन में अचानक ये बात आई – यह मैं क्या कर रहा हूँ? किसी-न-किसी को तो वहाँ जाना ही होगा। कठिनाइयाँ किसी-न-किसी को तो सहनी ही होगी। तो फिर मैं क्यों नहीं? मैं जाऊँगा, यह निश्चित कर लिया। मैंने विरजानन्दजी को जाकर कहा – मैंने निश्चिय किया है कि मैं चेरापूँजी जाऊँगा। मुझे लगा, महाराज बहुत प्रसन्न हुए। किन्तु उन्होंने कुछ कहा नहीं, एक बात भी नहीं। उन्होंने यह नहीं पूछा कि मैं क्यों नहीं जाना

चाहता था। कुछ समझाना या कुछ कहना, कुछ भी नहीं, बिल्कुल मौन रहे। किन्तु वे प्रसन्न हुए हैं, यह समझ गया। वास्तव में महाराज यही चाहते थे – मैं स्वयं चिन्तन करूँ, इस विषय पर विचार करूँ और निर्णय लूँ।

चेरापूँजी जाकर देखा – अभाव, ठण्डी, वर्षा, दुख; जो सब सुना था, उससे भी अधिक था। जो जितना कहा था, कम ही कहा था। (सभी हँसते हैं) वहाँ पहले ही स्कूल देखने के लिए कहा था। सुना कि स्कूल की स्थिति बहुत खराब है। एक वर्ष से शिक्षकों को वेतन नहीं मिल रहा है। प्रधानाध्यापक से बात हुई। उन्होंने विगत एक वर्ष से बिना मासिक वेतन के ही पढ़ाया है और स्कूल चलाने का प्रयास किया। किन्तु विगत एक वर्ष उन्होंने आश्रम के नाम से पास के एक दुकान में उधार खाया है। वहाँ बहुत-से रुपये उधार हो गये हैं। उसे चुकाना होगा। मेरा प्रथम कार्य था, शिक्षकों के शेष मासिक वेतन को देना। ठाकुर के जन्म-शताब्दी-महोत्सव होने के समय कुछ रुपए अधिक बच गये थे। उनमें से धीरे-धीरे सबका उधार चुकाया गया। मैंने प्रधानाध्यापक को कहा – आपको वेतन दे सकता हूँ या दुकान का उधार चुका सकता हूँ। एक साथ दोनों नहीं दे सकूँगा। किन्तु वे दोनों ही चाहते थे। किसी एक से सहमत नहीं होने के कारण वे स्कूल छोड़कर चले गए। उसके बाद नया प्रधानाध्यापक खोजने की समस्या आई। उन दिनों जहाँ-तहाँ इतने पढ़े-लिखे लोग सहजता से नहीं मिलते थे। अन्त में एक व्यक्ति मिला, उन्हें पाँच सौ रुपये देना होगा। क्या करूँ, सहमत हो गया। उस समय उन रुपयों की व्यवस्था करना ही मेरा उद्देश्य था। यहाँ-वहाँ प्रवचन देना प्रारम्भ किया। प्रवचन के द्वारा लोगों से धीरे-धीरे परिचित होने लगा। सप्ताह में एक दिन शिलाँग भी प्रवचन देने जाता था। उस दिन वहाँ से आते समय अपने सप्ताह भर के लिये आवश्यक चावल लेते आता था। यहाँ पर एक दुकान में दाल ऐसे ही दे देता था। आश्रम में स्कोवाश होता था। चावल-दाल और उबला हुआ स्कोवाश! बस! नमक भी नहीं खरीदता था। भात खाने की बात है, नमक खाने की बात नहीं है! मैं अपने लिए आश्रम से कोई पैसा खर्च नहीं करता था। केवल कूकर के नीचे आग जलाने के लिए महीने में आठ आने का काठ-कोयला खरीदता था। मेरे रहने की व्यवस्था एक स्कूल-भवन में हुई थी। टूटी हुई टीन की छत थी। बरसात मानो बाहर से अधिक कमरे में ही होती थी। कुर्ता का कपड़ा साधारण रहता था, किन्तु हमेशा भीगा हुआ। लगभग चौबीसों घण्टे भीगा ही रहता था। एक कपड़ा सुखाकर रखता था। जिस दिन शिलाँग जाता, उस दिन उसे पहन कर जाता था।

इसके कुछ दिन बाद नया प्रधानाध्यापक चला गया। एक व्यक्ति ने मुझे एक एम.ए. उत्तीर्ण युवक की सूचना दी। मैं उससे मिला। उसे सब कुछ बताया। वह सहमत हुआ। वेतन के सम्बन्ध में उसने कहा कि पचास रुपये मासिक देने से ही हो जाएगा। वह अविवाहित था। त्यागी-स्वाभाव का था। किन्तु मुझे लगा कि पचास रुपया बहुत कम हो जाएगा। मैंने उसे कहा – हमलोगों की स्थिति इतनी खराब नहीं है, आपको हमलोग थोड़ा इससे भी अधिक दे सकते हैं। वे किसी प्रकार भी सहमत नहीं हुए। उन्होंने कहा – "आप लोगों का स्कूल तो त्यागियों, संन्यासियों का है। इतना रुपया कहाँ से पाइएगा? पचास रुपया से ही मेरा काम हो जाएगा।" ठीक ही, उन्होंने अधिक रुपये नहीं लिए। उसके बाद घर-घर चंदा लेने के लिए जाना पड़ता था।

– महाराज! क्या उस समय लोग चंदा एक-दो रुपये देते थे?

महाराज – (दोनों आँखें फाड़कर देखते हुए) एक-दो रुपये! एक-दो रुपये जो लोग देते थे, वे लोग तो मिशन के बहुत बड़े भक्त थे! लोग चंदा देते थे – दो आना, आठ आना (सभी हँसते हैं)। साइकिल पर बैठकर शिलाँग में चढ़ाई-उतराई में ही बहुत घूमना पड़ता था। एक मुसलमान पुलिस इन्स्पेक्टर हमलोगों के बहुत परिचित थे। बाद में भी मैं साइकिल ही चलाता था। जब साइकिल से जाता था, तो वे नमस्कार कर कहते थे – "स्वामीजी अभी भी साइकिल चला रहे हैं? भूल नहीं जाइएगा, आयु बढ़ रही है। मैं साइकिल से उतरकर हँसकर प्रतिनमस्कार करके थोड़ी-सी बातचीत करता था। उनकी यही बात बीच-बीच में याद आती है – स्वामीजी भूल मत जाइएगा, आयु बढ़ रही है।

किन्तु एक बात है, इतना कुछ होने के बाद भी किसी दिन कष्ट का बोध नहीं हुआ। उसका कारण था – मैं हमेशा उत्तरकाशी के जीवन के साथ तुलना करता था। तुलना करके देखता, तो यहाँ बहुत अच्छा था। उत्तरकाशी का जीवन ही हमारा आदर्श था, वही हमारा मापदण्ड था। उसी जीवन के साथ तुलना करता था। विचार करके देखता

था कि उत्तरकाशी में कितनी तपस्या थी! उसकी तुलना में यहाँ बहुत अच्छा था। यदि हमलोग सबसे खराब अवस्था के लिये तत्पर रहें, तो कहीं भी हमलोगों को अशान्ति, पीड़ा नहीं होगी। बल्कि जहाँ-कहीं भी क्यों न रहें, देखेंगे कि हमारा आदर्श उस खराब अवस्था से यहाँ अच्छा है। यही सुखी होने का उपाय है।

जो भी हो, देखते-देखते कई वर्ष बीत गये। आश्रम की स्थिति अच्छी हुई। रामकृष्ण मिशन के परिचित भक्तों की संख्या भी बढ़ने लगी। मुझे लगा कि आश्रम की स्थिति अब उतनी खराब नहीं है। मैंने बेलूड़ मठ में माधवानन्दजी को पत्र लिखा – "महाराज! आश्रम और स्कूल की स्थिति लगता कि ठीक हो गयी है। आशा करता हूँ कि अब किसी को भी आश्रम चलाने में कठिनाई नहीं होगी। आप लोग चाहें, तो मुझे दूसरे आश्रम में भी भेज सकते हैं। माधवानन्दजी ने सूचना दी – ठीक है। तुम्हारी बात याद है, देखेंगे।" उस समय राजकोट आश्रम की स्थिति ठीक नहीं थी। मानो अब चलाना असम्भव है। सुना था कि पचहत्तर हजार ऋण लेकर आश्रम चल रहा है। वहाँ भेजने के लिये बेलूड़ मठ के संचालकवृन्द एक साधु खोज रहे हैं। किसे वहाँ भेजें? सँभालना तो होगा ही। मेरा निवेदन माधवानन्द जी भूले नहीं थे। उन्होंने मुझे चेरापूँजी से बुलाकर कहा – "जाओ! राजकोट जाओ।" इस बार मुझे सभी लोग डराने लगे। क्या तुम पागल हो गये हो कि राजकोट जा रहे हो? तुममें इतना साहस है? मैं पहले जैसा ठीक एक ही प्रकार का उत्तर दिया था। मुझमें बहुत साहस नहीं है। किन्तु किसी-न-किसी को तो जाना ही होगा। तो फिर मैं क्यों नहीं जाऊँगा? वहाँ गया। वहाँ भी धीरे-धीरे उस ऋण को चुकाया था। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ५६८ का शेष भाग

सन्ध्या के पूर्व मैं इतना अधिक थक चुका था कि मुझमें एक कदम तक चलने की क्षमता नहीं रह गयी थी। उसी समय एक घोड़ागाड़ी एक महिला सवारी लेकर कृष्णनगर की ओर जा रही थी। दो आने भाड़ा देकर मैं गाड़ी के कोचबाक्स पर बैठ गया। गाड़ीवान को दो आने देने के बाद मैं कृष्णनगर के राजभवन के पास उतरा और ठाकुर के एक भक्त योगेननाथ सेन का घर ढूँढ़कर उनके यहाँ जा पहुँचा।

यहाँ योगेन सेन का थोड़ा परिचय देना भी उचित होगा। वह दक्षिणेश्वर में ठाकुर के पास आता-जाता था। वह बड़ा ही सरल तथा प्रेमिक स्वभाव का व्यक्ति था। वह कलकत्ते के 'राइटर्स बिल्डिंग' में काम करता था और उसी भवन के उत्तरी हिस्से की निचली मंजिल में निवास करता था। बीच-बीच में हम लोग उसके घर जाकर बड़े आनन्द का अनुभव करते थे।

कृष्णनगर में योगेन्द्र सेन के घर ठाकुर का एक तैलचित्र देखकर मैं समझ गया कि यही योगेन का घर है। थोड़ी देर बाद उसके एक भाई ने आकर बताया कि योगेन कलकत्ते गया हुआ है।

रात मैंने वहीं बितायी। अगले दिन (शाम को) पाँच बजे के बाद योगेन के भाई ने मुझे खड़िया नदी के किनारे ले जाकर नवद्वीप जानेवाली एक नाव में बैठा दिया। सारी रात लग्गी चलाते हुए उस नाव ने एक घण्टा रात रहते, मुझे नवद्वीप के घाट पर पहुँचा दिया। बाकी रात मैंने नाव में ही बितायी। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ५५९ का शेष भाग

उद्देश्य जो भगवान हैं, उनको स्मरण करने का प्रयत्न करो। जप का उद्देश्य है सतत स्मरण-मनन।... ईसाइयों की प्रार्थना – ईश्वर के साथ सम्पर्क करना होता है।

मैं – ठाकुर ने कहा है, 'भगवान सब सुनते हैं।' हम लोगों का एक पथ प्रार्थना है। वे सुनते हैं क्या?

महाराज – हम लोगों का हृदय भगवान का उत्तर नहीं सुन पाता, क्योंकि हम लोगों का पाषाण हृदय भगवान के आह्वान का उत्तर देना नहीं जानता। भगवान आह्वान कर रहे हैं और हमलोगों का मन संसार में डूबा हुआ है। मन को चाबुक मारना होगा। आत्मसमर्पण होना चाहिए। **(क्रमशः)**

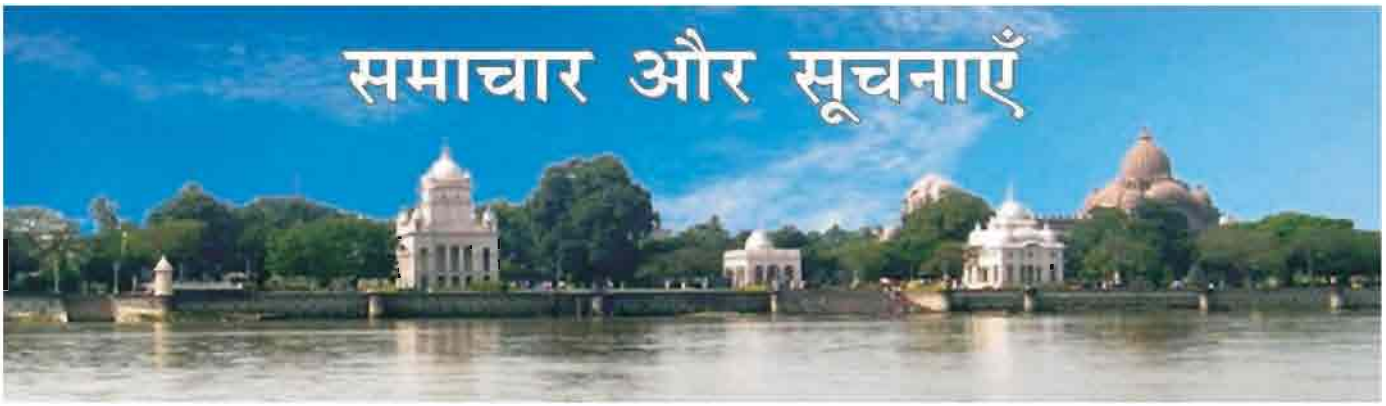

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा किये गये सेवा-कार्य

भारतीय केन्द्रों के समाचार

विद्यालय शिक्षा, निदेशालय, पश्चिम बंगाल सरकार ने ५ सितम्बर, २०२० शिक्षक दिवस के अवसर पर **रामकृष्ण मिशन, मालदा** को सर्वश्रेष्ठ विद्यालय का पुरस्कार प्रदान किया। पुरस्कार में एक ट्राफी एवं एक लाख रुपये की धन-राशि प्रदान की गयी।

मेघालय के राज्यपाल, श्री सत्य पाल मलिक, ने १० सितम्बर, २०२० को **रामकृष्ण मिशन, शिलॉग** केन्द्र का परिदर्शन किया।

रामकृष्ण आश्रम, राजकोट ने ११ सितम्बर, २०२० को पार्लियामेन्ट ऑफ वर्ल्डस रिलिजनस, शिकागो, यूएसए के संयुक्त तत्त्वावधान में ''विश्वशान्ति के लिए सर्वधर्म-समन्वय'' विषय पर एक वेबीनार का आयोजन किया, जिसमें रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज, अन्य संन्यासियों एवं विश्व के बहुत से प्रमुख विद्वानों ने व्याख्यान दिये।

रामकृष्ण मठ, चेन्नई ने तंजौर उपकेन्द्र के द्वारा १२ सितम्बर, २०२० को ऑटो रिक्शा चालकों हेतु प्रेरक व्याख्यान एवं कोरोना-जागरूकता कार्यक्रम का आयोजन किया, जिसमें कुल ६० लोग उपस्थित थे।

भारत सरकार में सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय राज्यमन्त्री श्री प्रताप चन्द्र सारंगी ने २५ सितम्बर, २०२० को **रामकृष्ण मिशन, दिल्ली** का परिभ्रमण किया।

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर को शिक्षा पोर्टल <the learningpoint.net>.. के द्वारा कक्षा दशम् की बोर्ड परीक्षा २०२० के परिणामों के आधार केन्द्र माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के विद्यालयों में सर्वश्रेष्ठ विद्यालय घोषित किया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, आसनसोल के द्वारा २२ सितम्बर, २०२० को रक्तदान किया गया।

रामकृष्ण मिशन के निम्नलिखित केन्द्रों ने नेत्र-चिकित्सा-शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें **रामकृष्ण मिशन आश्रम, मनसाद्वीप** ने १९ सितम्बर,२०२० को ५१ रोगियों का उपचार और ६७ रोगियों को चश्मा प्रदान किया। **रामकृष्ण आश्रम, राजकोट** ने सितम्बर, २०२० में ४५ रोगियों की चिकित्सा और ३५ का ऑपरेशन किया।

जीवनमूल्य शिक्षा एवं युवाशक्ति कार्यक्रम

रामकृष्ण मिशन, दिल्ली द्वारा सितम्बर, २०२० में जीवन-मूल्योन्मुखी २२ ऑनलाईन कार्यशालाएँ आयोजित की गयीं। इन कार्यशालाओं में देश के विभिन्न भागों से कुल १२९५ शिक्षकों ने भाग लिया।

५ सितम्बर, २०२० को शिक्षक दिवस के अवसर पर दिनांक **रामकृष्ण मिशन, राजकोट** के द्वारा शिक्षकों हेतु वेबिनार आयोजित किया गया, जिसमें १७६ शिक्षकों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन आश्रम, मालदा के द्वारा २२ से २९ सितम्बर, २०२० के बीच मालदा जिले के ५५८ परिवारों में १११६ किलो चावल, ५५८ किलो आटा, २२३ किलो दाल, ११२ लीटर खाद्य तेल, ४५५८ साबुन-टिकिया, ५५८ फेस मास्क एवं ३०१ साड़ियों का वितरण किया।

रामकृष्ण आश्रम और रामकृष्ण मिशन, बागेरहाट, बाँग्लादेश केन्द्र के द्वारा २६ सितम्बर, २०२० को बागेरहाट जिले के ५२ परिवारों में २६० किलो चावल, ५२ किलो दाल, ५२ किलो आलू, २६ लीटर खाद्य तेल एवं ५५ किलो नमक का वितरण किया गया।

'विवेक-ज्योति' में वर्ष २०२० ई. में प्रकाशित लेखकों तथा उनकी रचनाओं की सूची

अखण्डानन्द स्वामी – मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (२५) १२, (२६) ७३, (२७) १३२, (२८) १८५, (२९) २३२, (३०) २८४, (३१) ३११, (३२) ३७३, (३३) ४२२, (३४) ४४६, (३५) ४९०, (३६) ५६७

अग्रवाल श्रीराम इंजीनियर – सुखी जीवन के सूत्र ३६२

अमन अक्षर – भजन एवं कविता - भाव सूचियाँ बहुत हैं भाव सिर्फ राम है १६४

अलोकानन्द स्वामी – शारदीय दुर्गापूजा का पौराणिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व ४८९, उपवास का दर्शन ४०६, इत्थं यदा यदा बाधा.... ४४०

आत्मानन्द, स्वामी – गीता तत्त्व-चिन्तन (नवम अध्याय)– (१) २५, (२) ८१, (३) १३५, (४) १५८, (५) २२२, (६) २७४, (७) ३२७, (८) ३५८, (९) ४०३, (१०) ४७१, (११) ५१२, (१२) ५६२

उपाध्याय, पं. रामकिंकर – यथार्थ शरणागति का स्वरूप (८/२) २८, (८/३) ६२, (८/४) ११२, (८/५) १६५, (८/६) २१०, (९/१) २५४, (९/२) ३०७, (९/३) ३५०, (९/४) ३९८, (९/५) ४५३, रामराज्य का स्वरूप (१/१) ४९८, (१/२) ५३८

उपाध्याय मोहन – प्रेम की महिमा ४०१

ओजोमयानन्द स्वामी – संगति का प्रभाव १८, कर्तव्यनिष्ठा ६९, आत्मावलोकन १२५, शिव ज्ञान से जीव सेवा १५५, क्या आप आधुनिक हैं? २२४, एक रूप तुम भ्राता दोऊ २४८, २९७, (कविता) एक संदेश बन जाओ तुम ३७२, सफलता का इतिहास ४१३, पुरुषार्थ से अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करें ५०८, सकारात्मक दृष्टिकोण से अपने जीवन को निखारिये ५५२

कंचन दीदी – समता की दिशा में विनोबा जी ५१५

कुमावत बालकृष्ण – स्वकर्म से सिद्धि प्राप्ति २७७, विश्व के दो महान दार्शनिकों का परस्पर अनूठा उपहार ५६९

गुप्ता सीताराम – अच्छे संस्कार से सही बीजारोपण करें ६५, वास्तविक विश्वास अथवा आस्तिकता ३६५

गुरु गिरि मोहन पं. – जयतु नर्मदे हर हर माँ! ८४

गौतमानन्द स्वामी – भगवान श्रीरामकृष्ण देव की प्रासंगिकता १४

चेतनानन्द स्वामी – साधुओं के पावन प्रसंग (१३) ३७, (१४) ८३, (१५) १३७, (१६) १८९, (१७) २३५, (१८) २८६, (१९) ३३१, (२०) ३७६, (२१) ४२७, (२२) ४७५, (२३) ५१९, (२४) ५५७, विनम्रता की मूर्ति : भगवती श्रीमाँ सारदा २०५

चूड़ीवाल अरूण – भगवान के विभिन्न नाम क्यों ५६८

जोशी मीनल – मित्रता : एक अनमोल सम्बन्ध ४६६

झुनझुनवाला लक्ष्मी निवास – मेरी स्मृतियों में महाकवि निराला ८५

टवाणी कृष्ण चन्द्र – अपने व्यक्तित्व को निखारिए ३१

त्रिपाठी डॉ. विजय प्रकाश – भारतीय संस्कृति-धर्म-प्रचारक : स्वामी विवेकानन्द ३२९

त्रिपाठी पं. सूर्यकान्त (निराला) – मुक्ति गीत १६४

त्रिपाठी भानुदत्त 'मधुरेश' – (कविता) उसका जीना भी क्या जीना २३०, (कविता) स्वयं सँवर जायेगा कल २६०, सौ-सौ जय-दीप जलाता चल ५०२

त्यागात्मप्राणा प्रवाजिका – स्वामी विवेकानन्द की समदृष्टि ५४१

तन्निष्ठानन्द स्वामी – पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और रामकृष्ण संघ १०६, १७८, रामकृष्ण संघ में दुर्गापूजा ३९२, ४५९

तरुण विजय – मानव रूपी मन्दिरों का सम्मान करें १७६

तिवारी आनन्द 'पौराणिक' – तेरे हाथों में सौंप दिया..२२, छबि अद्भुत प्रभु जगन्नाथ की २६०, हरि-सा हीरा छाड़ि के काहू की ना चाह ३४८, जय जय गणपति ३५३

द्विवेदी गोपेश – (भजन) हम पर कृपा बरसाओ माँ! ४४५

पंकज ए.पी.एन. – गगन की थाली, सितारे चाँद सूरज ३१८, ३६९

पद्माक्षानन्द स्वामी – मैं विश्वासघात नहीं कर सकता २७, चक्रधारी महारथी अभिमन्यु ७५, आज्ञाकारी राजेन्द्र १२०, शिक्षा ऐसे ग्रहण करें ३१०

परमार बाबूलाल – करो हरि भजन सानन्द ३५३

पेंढारकर, डॉ. शरद चन्द्र – विष भी अमृत बन जाये, जब कृपा करें नन्दलाल १७, परधन विष से भी विषैला ७२,

कष्ट परेहु साधुजन कबहूँ न होत मलान ११७, साक्षर बनो राक्षस नहीं १६०, वेषभूषा का प्रभाव २३१, सादा जीवन, उच्च विचार, नि:स्पृहता का है आधार; जिन-जिन मन आलस किया, जनम-जनम सब जन पछताया २७१, ब्रह्मज्ञान गुरु ही दे सकते हैं ३२६, हरि-सा हीरा छांड़ि के काहू की ना चाह ३४८, इस जगत में श्रेष्ठ है नारी का जननी रूप ४२९, भूले स्वयं स्वरूप देखि रूप अनूप ४५६, पानी पीओ छानकर, चेला बनाओ जानकर ५२२, करनी को 'किया' कहे कथन गलत नहिं होय ५४९

प्रपत्त्यानन्द, स्वामी – (सम्पादकीय) विश्व में सर्वश्रेष्ठता प्राप्ति हेतु आत्मविश्वास और देश प्रेम परम आवश्यक ६, परम ब्रह्म का श्रीरामकृष्णावतार ५४, चैतन्य के आनन्द की अभिव्यक्ति होली : श्रीरामकृष्ण और श्री चैतन्य के सान्निध्य में १०२, हे राम तेरा अवतार हुआ १५०, आये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास १९८, परमानन्द अमृत सिन्धु के अनुसंधान में ... २४६, अमृतसागर की कुंजी गुरुदेव के चरण में २९४, भक्तवत्सल श्रीकृष्ण का हुआ दिव्य अवतार ३४२, सत्कीर्ति, सद्गति और ईश्वर की प्रसन्नता का सुगम पथ – जन-सेवा ३९०, दुर्गे देवि नमोऽस्तुते ४३८, मातृ देवो भव, पितृदेवो भव ४८६, वैश्विक महामारी कोरोना-१९ की चुनौतियाँ और सन्देश ५३४

पाण्डेय सुखदराम – मुक्ति प्राप्त होगी सबको (कविता) ६१, ईश्वर को पाना ही है लक्ष्य हमारा ३०५

पाण्डेय अजय कुमार – भारत विश्व-इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ेगा ४७०

प्रसाद देवेन्द्र – सदगुरु ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ५०२

ब्रह्मेशानन्द स्वामी – मोक्ष का चतुर्व्यूह - ५६, योगाशास्त्र में समाधि १०४, संघं शरणं गच्छामि २००

भजनानन्द स्वामी – हमें नैतिक क्यों होना चाहिए? २६३

भारतीय गोपाल – जागो माँ! कुण्डलिनी ४४८

भूतेशानन्द स्वामी – आध्यात्मिक जिज्ञासा (४९) ४४, (५०) ६७, (५१) १३०, (५२) १७४, (५३) २३४, (५४) २७२, (५५) ३२५, (५६) ३६७, (५७) ४१७, (५८) ४५८, (५९) ५२४, (६०) ५७०

मजुमदार सुप्रभा – श्रीमाँ का अद्भुत जीवन ३९

मनराल मोहन सिंह – जय जय जगन्नाथ ३७५

मालवीय संतोष – तृप्ति का बोध २४७

मुरारी बापू – सन्त के लक्षण ११५

मिश्रा सुनयना डॉ. – बहन का शाप भी वरदान बन जाता है : भाई-दूज का त्यौहार ४९३

मैथिलीशरण संत (भाईजी) – तुलसी की कथा भगवन्त की है ४०१, अंगद राम की प्रीति और नीति के चरम स्तम्भ ५०६, सियाराम को भज लिजिए (भजन) ५४०, यशोदानन्दन श्री कृष्ण : आत्मसंयम योग की पूज्य मूर्ति ५४८

यादव डॉ. रमेशचन्द्र 'कृष्ण' – क्रान्तिकारी भगवान श्री कृष्ण ३५५

राजेश्वरानन्द सरस्वती स्वामी – भक्ति में राधारानी पुत्री बनीं ७६, बाबा श्रीरघुनाथ दास जी १२१, (भजन) राम-राम राम कहना जी १२९, कनक-भवन की श्यामाजी ४८८

राणा सुखवीर सिंह – (कविता) इतना प्यार करेगा कौन? ५१८

रामनिवास डॉ. – संत रविदास जी की दार्शनिक चेतना १६८, २१६,

वर्मा ओमप्रकाश (डॉ.) – (भजन) माँ तुमको कैसे पाऊँ २२, ठाकुर तारो अबकी बार १२९, श्री कृष्ण महिमा ३५३, जय गणेश गणनायक स्वामी ४१८, योगीराज तुम श्रेष्ठ महान ५०२, मन रे! रामकृष्ण-गुण गाओ ५४५

विरजाप्राणा प्रव्राजिका – स्वामी विवेकानन्द का वैश्विक मन ८, ५८

विमोहचैतन्य ब्रह्मचारी – परिश्रमी विद्यार्थी भगत सिंह १७३, बीरबल साहनी २१४, जेन्टलमैन सोल्जर : कैप्टन विजयन्त थापर ३१३, देशभक्त मैडम भीकाजी कामा ३५४, सारागढ़ी का ऐतिहासिक युद्ध ४०२, मुझे छोड़ दो मैं अनाथ हूँ ४५७, सेवानिष्ठ डॉ. श्रीबालकृष्ण शिवराम मुंजे ५०१, प्राण दे देंगे, लेकिन झुकेंगे नहीं ५४६

शर्मा के.डी. डॉ. – ज्ञान प्राप्ति की सात भूमिकाएँ : योगवासिष्ठ के प्ररिप्रेक्ष्य में २८१

शर्मा त्रिभुवन राम – क्षमा का अद्भुत आदर्श ३८२

शर्मा राघवेन्द्र डॉ. – संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय चेतना ३८०

शर्मा सत्येन्दु डॉ.– सरस्वती स्तुति: २२, आचार्य शंकर का विलक्षण व्यक्तित्व एवं कृतित्व १५२, भगवद्भक्तों पर गंगा का वात्सल्य २५७, नीतिश्लोका: ३२४, मातृभूमिसूक्तम् (काव्य) ३५७, श्री भगवान की सेवा-लीला ४१९, ब्रह्मसूक्तम् (संस्कृत काव्य) ५६६

शर्मा सुरेशचन्द्र डॉ. – हमारा पौराणिक साहित्य ४२४, ४४९

शर्मा विश्वा – दीपावली की अवधारणा ५०२

शशांकानन्द स्वामी – स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में बेरोजगारी और गरीबी की जंजीरों से मुक्ति.... ३४४

श्रीशंकराचार्य – प्रश्नोपनिषद् (१) २६८, (२) ३०६, (३) ३४९, (४) ३९७, (५) ४७४, (६) ५०५, (७) ५६५

श्रीवास्तव विजय कुमार – संसार बदल जायेगा ४०१

सक्सेना प्रवेश – ऋग्वेद में लोक जीवन की झाँकी १६१

सत्यरूपानन्द, स्वामी – धैर्य : साधक-जीवन का परम गुण ४१, जीवन की कमी भगवान से पूरी होगी ९१, बालक के समान शुद्ध बनो १४०, भगवान की भक्ति के बिना जीवन कष्टमय होता है १८७, आध्यात्मिक पथ पर तो हमें स्वयं ही चलना होगा २२१, आध्यात्मिक जीवन हेतु दिनचर्या और विचारों पर ध्यान दो २६२, सांसारिक आशा-आकांक्षा, लोभ-मोह से भगवान नहीं मिलते ३१७, संसार में कहीं भी जाओ.... अपनी माँ को न भूलो ३७९, शान्त और सुखी रहने का सरल मार्ग ४१६, भगवन्नाम का संस्कार डालो ४७८, लोभ और आसक्ति : भगवान की प्राप्ति में महान शत्रु ५२३, मन पर कठोर शासन कर उसे भगवान में लगाओ ५४७

सुहितानन्द, स्वामी – सारगाछी की स्मृतियाँ (८७) २३, (८८) ७८, (८९) ११८, (९०) १७१, (९१) २२९, (९२) २८०, (९३) ३१५, (९४) ३६३, (९५) ४११, (९६) ४६८, (९७) ५०३, (९८) ५५०

सुन्दरदासजी संत – गुरु के प्रसाद राम-नाम गुण गाइए ३०५

सेन अक्षय कुमार – रामकृष्ण का नाम है अनुपम (भजन) ३०५

सोलंकी कमल सिंह – आरती भारत माता की ३५३

सिन्हा पूनम, सिंह नारायण प्रसाद – उत्तर-पूर्वी भारत में स्वामी विवेकानन्द के सेवादर्श को साकार करने वाले कर्मठ विलक्षण संन्यासी : केतकी महाराज ३३

सिंह वैभव – मातृभक्त शिवाजी २६१

अन्य संकलन

पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) – ५, ५३, १०१, १४९, १९७, २४५, २९३, ३४१, ३८९, ४३७, ४८५, ५३३

लेख एवं प्रसंग – दृग्-दृश्य विवेक – (अनुवादक : स्वामी विदेहात्मानन्द) (८) ३२, (९) ८०, (१०) १३९, (११) १८४, (१२) २१३

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द – (३७) ४२, (३८) ९२ (३९) १२३, (४०) १८८, (४१) २०८, (४२) २६९, (४३) ३२२, (३२) ३४७, (३३) ४३८, (३४) ५०६, (३५) ५५४, (३६) ६१६

स्तोत्र-भजनादि संकलन – विवेकानन्द स्तुति: ५, रामकृष्ण शुभ: न: ५३, शिक्षाष्टकम् १०१, होली खेलत राम मुरारी १२९, श्रीराम स्तुति: १४९, बुद्धदेव वन्दना १९७, गंगा-वन्दना २४५, गुरु स्तुति: २९३, श्रीकृष्ण-स्तुति: ३४१, स्वामी विवेकानन्द स्तुति: ३८९, भगवती स्तुति: ४३७, भगवतीस्तोत्रम् ४८५, श्रीमद् भगवदगीता स्तुति: ५३३

पुस्तक समीक्षा – श्रीमद् अध्यात्मरामायणम् ९४, आधुनिक मानव शान्ति की खोज में ३८३, मेरे गुरु स्वामी विवेकानन्द जैसा उन्हें देखा ३८३

समाचार और सूचनाएँ – ४६, ९५, १४१, १९०, २३७, २८८, ३३४, ३८४, ४३०, ४७९, ५२६, ५७३

वार्षिक अनुक्रमणिका (२०२०) – ५७४

पुस्तकें प्राप्त हुईं –

१. कण कण में भगवान – स्वामी श्रद्धानन्द
अनुवादक – लक्ष्मीनारायण इन्दुरिया

२. ईशोपनिषद् – व्याख्याकार : स्वामी आत्मानन्द

३. केनोपनिषद् – व्याख्याकार : स्वामी आत्मानन्द
प्रकाशक – स्वामी ब्रह्मस्थानन्द, अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ धन्तोली, रामकृष्ण आश्रम मार्ग, धन्तोली, नागपुर – ४४० ०१२ (महाराष्ट्र)

४. स्वामी विवेकानन्द की अलमोड़ा की तीन यात्राएँ – गर्टयूड एमरसन सेन
प्रकाशक – स्वामी ध्रुवेशानन्द, अध्यक्ष, रामकृष्ण कुटीर, विवेकानन्द कार्नर, अलमोड़ा - २६३ ६०१ (उत्तराखण्ड)

५. स्वामी विवेकानन्द का बचपन – प्रणवेश चक्रवर्ती,
अनुवादक – लक्ष्मीनारायण इन्दुरिया
प्रकाशक – स्वामी शुद्धिदानन्द, अध्यक्ष, अद्वैत आश्रम, ५ डीही, इन्टाली रोड, कोलकाता – ७०० ०१४

६. हनुमन्महानाटक – भानुदत्त त्रिपाठी, 'मधुरेश',

७. जीवन गीत – भानुदत्त त्रिपाठी, 'मधुरेश',

८. विनयाष्टक – भानुदत्त त्रिपाठी, 'मधुरेश',

९. नवदुर्गा-स्तोत्र – भानुदत्त त्रिपाठी, 'मधुरेश',
प्रकाशक – साहित्य मण्डप, चन्द्रलोक कॉलोनी, शहजादपुर अकबरपुर – २२४ १२२, अम्बेदकर नगर (उ.प्र) मो. ७०८०३-२२७९५